ॐ

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला का पंचासवां पुष्प

श्री तत्त्वानुशासन विधान

राजमल पवैया

संपादक

श्री डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री नीमच

अध्यक्ष अ भा. दि. जैन विद्वत् परिषद

प्रकाशक

भरत पवैया एम. काम. एल. एल. बी.

संयोजक

तारादेवी पवैया ग्रंथमाला

४४ इब्राहीमपुरा भोपाल - ४६२ 001

प्रथम	वीरशासन जंयती	न्योछावर
आवृत्ति	वीर सं. २५२३	२५/-
	२० जुलाई १९९७	

ॐ

श्री तत्त्वानुशासन विधान

राजमल पवैया रचित

अनेको आध्यात्मिक विधानों के पश्चात् हमारे

भावी प्रकाशन

१. तत्त्व ज्ञान तरंगिणी विधान
२. तत्त्वार्थ सार विधान
३. कसाय पाहुड विधान
४. ज्ञानार्णव विधान
५. कर्म दहन विधान
६. आत्मानुशासन विधान

संयोजक

भरत पवैया

दूरभाष	तारादेवी पवैया प्रकाशन	४४ इब्राहीमपुरा
५३१३०९	भोपाल	४६२००१

विनम्र निवेदन

श्री रामसेनाचार्य कृत २५९ श्लोकों से सुशोभित तत्त्वानुशासन ध्यान का क्षक उत्कृष्ट ग्रथ है ।

प्रसिद्ध जिनवाणी भक्त एव प्रचारक श्री महावीर प्रसाद जी सराफ दिल्ली ने यह महान ग्रथ मुझे भेजा था । इसे पढने के बाद इस पर कुछ लिखने का तभी मन बना लिया था सम्यक् ध्यान विधि पर लिखा जाने वाला यह पहिला विधान है। इसके लिये आदरणीय श्री महावीर प्रसाद जी धन्यवाद के पात्र हैं ।

सपादन के लिए पूर्व की भाति श्री डा देवेन्द्र कुमार जी शास्त्री का मैं आभारी हूँ उनकी मुझ पर सदैव कृपा रहती है ।

बीजाक्षर एव ध्यान सूत्र के लिए महाराष्ट्र की क्षुल्लिका द्वय को जो अभी फलटण में है उनको हार्दिक धन्यवाद देता हू । क्षुल्लिका श्री सुशील मति जी एव सुव्रता जी का मुझ पर परम उपकार है मेरे निवेदन पर तत्काल वे बीजाक्षर एव ध्यानसूत्र रचकर भेज देती है ।

सप्रति तत्त्वार्थ सार के ७२५ सूत्र एव ज्ञानावर्ण के १९७४ सूत्र रच रही हैं । वे दीर्घायु हो यही भावना है मै श्री नीरज जैन शुभ श्री आफ्सेट प्रोसेसर और श्री योगेश सिहल अजना प्रिटर्स को भी धन्यवाद देता हू ।

अंत मे अपने सभी संरक्षको और सहयोगियों का आभारी हू । इत्यलम्।

भूलों के लिए क्षमाप्रार्थी

राजमल पवैया

४४ इब्राहीमपुरा भोपाल ४६२ ००१
फोन ५३१३०९

११००/- सौ. अनीता ध. प. मोहित कुमार जी मेरठ
११००/- सौ. गजराबाई ध. प. चौधरी फूलचंद्रजी, न्यु मुबई
११००/- सौ. स्व. तुलसाबाई ध. प. स्व. बालचद्रजी अशोक नगर
११०१/- सौ. प्रेमबाई ध. प. शान्तिलाल जी खिमलासा
११०१/- सौ. स्नेहलता ध. प. देवेन्द्रकुमार जी बडकुल अरविन्द कटपीस, भोपाल
११०१/- सौ. शान्तिबाई ध. प. श्री श्रीकमलजी एडवोकेट, भोपाल
११०१/- सौ. रेशमबाई ध. प. श्रीछगनलाल जी मदन मेडिको, भोपाल
११०१/- श्रीमती जैनमती ध. प. स्व. मदनलालजी भोपाल
११०१/- सौ. कमलाबाई ध. प. श्री माणिकचद जी पाटोदी, लुहारदा
११०१/- सौ. तेजकुवर बाई ध. प. श्री उम्मेदमल जी बडजात्या दादर, मुबई
१००१/- श्री दि. जैन मुमुक्षु मडल नवरग पुरा अहमदाबाद
११०१/- सौ. कोकिला बेन ध. प. श्री हिम्मतलाल शाह कहान नगर दादर, मुबई
११०१/- श्री सुरेशचदजी सुनीलकुमारजी, बेंगलोर
१०००/- श्री पूज्य कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली
११०१/- सौ. सविता जैन एम. ए. ध.प. श्री उपेन्द्रकुमार पवैया, भोपाल
११०१/- सौ. सुशीलादेवी ध. प. श्री चद्र जैन सुभाष कटपीस, भोपाल
१००१/- श्री सौ. चद्रप्रभा, ध. प. डा. प्रेमचदजी जैन ४ अरविन्द मार्ग, देहरादून
११०१/- श्री आचार्य कुन्दकुन्द साहित्य प्रकाशन समिति, गुना
११०१/- सौ. शान्तिदेवी ध. प. श्री बाबूलालजी (बाबूलाल प्रकाश चद्र), गुना
११०१/- सौ. उषादेवी ध. प. श्री राजकुमारजी (बाबूलाल प्रकाश चद्र), गुना
११०१/- सौ. अशरफीदेवी ध. प. ज्ञानचदजी धरनावादवाले, गुना
११०१/- सौ. पद्मादेवी ध. प. श्री डा. प्रेमचद जी जैन, गुना
११०१/- सौ. धनकुमारजी विजयकुमारजी, गुना
११०१/- सौ. आशादेवी ध. प. अरविन्द कुमारजी, फिरोजाबाद
११०१/- सौ. श्री ज्ञानचदजी मनोज कटपीस, भोपाल
११०१/- सौ. रजनीदेवी ध. प. श्री नरेन्द्र कुमारजी जियाजी सूटिंग, ग्वालियर
२००१/- सौ. मजुला बेन ध. प. श्री मणिलालजी, दादर मुबई
११०१/- स्व. सुआबाई मातुश्री रिखवचद्र नेमीचद पहाड़िया, पीसांगन (अजमेर)
११०१/- सौ. तुलसाबाई ध. प. श्री नवलचदजी जैन, भोपाल
११०१/- सौ. रत्नाबाई ध. प. श्री सरदारमलजी वर्फी हाउस, भोपाल

११०१/-	श्री नवल कुमारी ध. प. स्व बाबूलालजी सोगानी, भोपाल
११०१/-	श्रीमती कमलश्री बाई ध. प. स्व डालचंदजी जैन, भोपाल
११०१/-	श्री परमागम मंदिर ट्रस्ट, सोनागिर
११०१/-	श्री दि. जैन मुमुक्षु मंडल, हिम्मत नगर
११०१/-	सौ. मंजुला ध. प. शान्तिलाल गांधी, मैनेजर, सेन्ट्रलबैंक, जोरहाट
११०१/-	श्रीमती सुखवती बाई ध.प. स्व. श्री बाबूलाल जी ठेकेदार, भोपाल
११०१/-	स्व. श्रीमतीबाई ध. प. कालूरामजी, मल्यम टेक्सटाइल, भोपाल
११०१/-	सौ. शकुन्तलादेवी ध. प. रतनलाल श्री सोगानी, भोपाल
२५०० /-	सौ. रमाबेन धर्मपत्नी सुमन भाई माणेकचन्द्र दोशी, राजकोट
११००/-	सौ. मीनादेवी एडवोकेट धर्मपत्नी डा. राजेन्द्र भारिल्ल, भोपाल
१०००/-	श्रीमती पुष्पा पाटोदी, मल्हारगंज, इन्दौर
११००/-	श्री जेठाभाई एच. दोशी सेबिन ब्रदर्स, सिकंदराबाद
११००/-	सौ. सुशीलाबाई धर्मपत्नी लक्ष्मीचंद जैन विकास आटो, भोपाल
११००/-	सौ. मीना जैन धर्मपत्नी राजकुमार जैन सेन्ट्रल इन्डिया बोर्ड एन्ड पेपर मिल, भोपाल
११००/-	सौ. रजनी जैन धर्मपत्नी अरविन्द कुमार जैन अनुराग ट्रेडर्स, भोपाल
१०००/-	स्व. गुलाब बाई धर्मपत्नी स्व. पातीराम जी जैन, भोपाल
११००/-	सौ. शान्तिदेवी धर्मपत्नी श्री नरेन्द्र कुमार आदर्श स्टील, झांसी
१०००/-	श्रीमती मातेश्वेरी चौधरी मनोज कुमार जैन माटुन्गा, मुंबई
११००/-	श्री कोकिलाबेन पंकजकुमार पारिख दादर, मुंबई
११००/-	स्व. श्री कंकुबेन रिखवदास जी द्वारा शान्तिलालजी दादर मुंबई
११००/-	श्री हीराभाई चिमनलाल शाह प्रदीप सेल्स पाय धुनी मुंबई
११००/-	श्रीमती दक्षाबेन विनयदक्ष चेरिटेबल ट्रस्ट दादर, मुंबई
१०००/-	सौ. फैन्सीबाई धर्मपत्नी सेसमलजी कात्रज, पूना
११००/-	स्व. सौ. मिश्रीबाई धर्मपत्नी राजमल जी फर्म एस रतनलाल, भोपाल
११००/-	सौ. हीरामणी धर्मपत्नी श्री मांगीलालजी जैन , भोपाल
११०१/-	सौ. पूनम जैन धर्मपत्नी श्री देवेन्द्र कुमार जैन, सहारनपुर
२१०१/-	श्री पंडित कैलाशचंद जी कुन्द-कुन्द कहान स्वाध्यायमंदिर देहरादून
११०१/-	सौ. मनोरमादेवी धर्मपत्नी श्री जयकुमार जी बज कोहेफिजा, भोपाल
११०१/-	श्री भवुतमलजी भंडारी, बेंगलोर
११०१/-	श्री फूलचंदजी विमलचंद जी झाझरी, उज्जैन

११११/ स्व. श्री जयकुमार जी की स्मृति में मेसर्स मनीराम मुशी लाल उद्योग समूह, फिरोजाबाद
११०१/- सौ. अनीता धर्मपत्नी राजकुमार जी, भोपाल
११०१/- सौ. मीनादेवी धर्मपत्नी चन्द्रप्रकाश जी, इटावा
११०१/- सौ. मोतीरानी धर्मपत्नी कैलाश चद्र जी , भिण्ड
११०१/- सौ. ब्रजेश धर्मपत्नी अभिनदन प्रसाद जी, सहारनपुर
२१०१/- सौ. रत्नप्रभा धर्मपत्नी मोतीचदजी लुहाड़िया, जोधपुर
५१११/- श्री केशरीचद जी पूनमचद जी सेठी ट्रस्ट, नई दिल्ली
११०१/- सौ मीनादेवी धर्मपत्नी केशवदेव जी, कानपुर
११०१/- श्री श्यामलाल जी विजयवर्गीय पी. वी. ज्वेलर्स, ग्वालियर
११०१/- सौ. मधु धर्मपत्नी विनोद कुमार जी, ग्वालियर
११०१/- स्व. कैलाशीबाई धर्मपत्नी स्व. रतनचद जी, ग्वालियर
११०१/- स्व. रत्नादेवी धर्मपत्नी स्व. छुन्नामल जी , ग्वालियर
११०१/- सौ. अरुणा धर्मपत्नी निर्मलचद जी, ग्वालियर
११०१/- स्व. चमेलीदेवी धर्मपत्नी निर्मल कुमारजी एडवोकेट, ग्वालियर
११०१/- स्व. रघुवरदयाल जी की स्मृति में खेमचद जी सत्यप्रकाश जी, भिण्ड
११०१/- चि. अकुर पुत्र सौ. सुधा ध.प.सुनील कुमार जैन, भिण्ड
११०१/- सौ. मायादेवी धर्मपत्नी सुभाष कुमार जी, भिण्ड
११०१/- सौ. विमलादेवी धर्मपत्नी उत्तम चद जी बरोही वाले , भिण्ड
११०१/- स्व. श्री मूलचद भाई जैचद भाई भू. पूर्व मत्री तारगा जी
११०१/- श्री दोसी बसतलाल जी मूलचद जी , मुबई
११०१/- श्री कनुभाई एम. दोसी, मुबई
११०१/- श्रीमती लीलावती बेन छोटालाल मेहता, मुबई
११०१/- सौ निर्मलादेवी धर्मपत्नी छोटेलालजी एन. पाण्डे, मुबई
११०१/- श्री शान्तिलाल जी रिखवदास जी दादर, मुंबई
११११/- स्व. मातेश्वरी सुवाबाई धर्मपत्नी स्व. रतनलालजी, पीसांगन की स्मृति में श्री रिखवचदजी नेमीचंदजी पहाड़िया परिवार द्वारा
११०१/- सौ. कृष्ण देवी ध. प. श्री पदम चद्र जी आगरा
११०१/- कुन्द कुन्द स्मृति भवन आगरा
२५०१/- श्री शान्तिनाथ दि. जैन ट्रस्ट केकड़ी द्वारा श्री मोहनलाल कटारिया
११०१/- श्री दि. जैन समाज, भीलवाड़ा

११०१/-	श्री रामस्वरूपजी महावीर प्रसाद जी अग्रवाल, केकड़ी
११०१/-	श्री लादूराम श्री ताराचदजी अग्रवाल, केकड़ी
२१०१/-	सौ. चमेली देवी धर्मपत्नी शिखरचंद जी सर्राफ , विदिशा
११०१/-	सौ. सुषमादेवी धर्मपत्नी श्री डा. आर. के. जैन, विदिशा
११०१/-	श्रीमती बदामी बाई धर्मपत्नी स्व. श्री बाबूलाल जी (५०१), भोपाल
११०१/-	स्व. शक्कर बाई धर्मपत्नी स्व. बिहारीलाल जी, बैरसिया
११०१/-	स्व. लक्ष्मीबाई धर्मपत्नी स्व. बंशीलाल जी, भोपाल
११०१/-	सौ. रतनबाई ध.प. नथ्थूमल जी भंडारी, भोपाल
११०१/-	सुश्री बा .ब्र. पुष्पा बेन झाझरी, उज्जैन
११०१/-	श्रीमती ताराबाई झाझरी. ध.प. स्व. श्री राजमल जी झाझरी, गौतमपुरा
५००१/-	श्री दिगम्बर जैन मंदिर, लशकरी गोठ, गोराकुन्ड, इन्दौर
११०१/-	सौ. चंदन बाला ध.प. श्री प्रकाशचंद जी भंडारी, भोपाल
११०१/-	सौ. राजकुमारी ध.प. श्री महावीर प्रसादजी सरावगी, कलकत्ता
११०१/-	सौ. स्नेह प्रभा ध.प. श्री सुगन चंद जी मालोरिया, अशोकनगर
२५०१/-	श्री भरतभाई खेमचंद जेठालाल शेठ राजकोट
११०१/-	ब्र. सुशीला श्री, ब्र. कंचनबेन, ब्र. पुष्पा बेन, सोनगढ
११०१/-	सौ. विमलादेवी ध.प. श्री बाबूलालजी, हाटपीपलावाले, भोपाल
११०१/-	श्रीमती विमलादेवी ध.प. स्व. श्री भगवानदासजी भंडारी, गंजबासोदा
११०१/-	स्व. कुमारी शिखा सुपुत्री श्री नीलकमल बागमलजी पत्रैया, भोपाल
११०१/-	सौ. स्नेहलता ध.प. श्री जैनबहादुर जैन, कानपुर
२१०१/-	सौ. कंचनबाई ध.प. श्री सौभाग्यमलजी पाटनी, बंबई
२५०१/-	श्री ताराबाई मातेश्वरी श्री मांगीलालजी पदमचंदजी पहाडिया,इन्दौर
११०१/-	सौ. शशिबाला ध.प. श्री सतीश कुमारजी सुपुत्र श्री पन्नालालजी, भोपाल
११०१/-	श्री आनंद कुमारजी देवेन्द्र कुमारजी पाटनी, इन्दौर
११०१/-	सौ. प्रभादेवी ध.प. श्री गुलाबचंदजी जैन, बेगमगंज
११०१/-	श्री समरतबेन ध.प. श्री चुन्नीलाल रायचंद मेहता, फतेपुर
११०१/-	श्री ताराबेन ध.प. स्व. धर्मरत्न बाबुभाई चुन्नीलाल मेहता, फतेपुर
११०१/-	कुमारी समता सुपुत्री श्री आशादेवी पांड्या सुपुत्री स्व. श्री किशनलालजी पांड्या, इन्दौर
११०१/-	स्व. श्री राजकृष्णजी जैन (श्री प्रेमचंद्र जी जैन के पिता जी) दिल्ली
११०१/-	स्व. श्रीमती कृष्णादेवी ध. प. श्री स्व. राजकृष्ण जी

११०१/- स्व. श्रीमती पदमावती ध. प. श्री प्रेमचन्द्रजी जैन अहिंसा मंदिर (दिल्ली)
११०१/- सौ. श्रीमती चन्द्रा ध.प. श्री उमेश चन्द्र जी जैन द्वारा श्री संजीवकुमार राजीव कुमारजी, भोपाल.
११०१/- सौ. पाना बाई ध. प. श्री मोहल लाल जी सेठी गौहाटी (आसाम)
३००१/- श्रीमती रत्नम्मा देवी ध. प. स्व. श्री रत्न वर्मा हैगडे मातेश्वरी राजर्षि श्री वीरेन्द्र हैग्गडे धर्माधिकारी धर्मस्थल (कर्नाटक)
१५००/- आकाशवाणी एवं दूरदर्शन केन्द्र, भोपाल मे प्राप्त पारिश्रमिक
११०१/- सौ. कलाबेन श्री हसमुख भाई वोरा, मुबई
११०१/- श्री स्वर्गीय जसवती बेन श्री प्रवीण भाई वोरा, मुबई
११०१/- सौ. पुष्पाबेन कान्तिभाई मोटाणी, मुबई
११०१/- पूज्य श्री स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली ६४ ऋद्धि विधान के समय कवि सम्मेलन में
११०१/- सौ. वसुमति बेन श्री मुकुन्दभाई खारा, मुबई
११०१/- श्री कटोरी बाई ध.प. स्व. जयकुमार जी जैन मातेश्वरी ब्रिगेडियर श्री एम.के. जैन, दिल्ली
११०१/- स्वर्गीय पानाबाई ध.प. सत्यनारायण सरावगी मातेश्वरी राजूभाई, कानपुर
११०१/ सौ. राजकुमारी ध.प. श्री कोमलचन्दजी गोधा जयपुर
२१०१/ सौ. रतनबाई ध.प. श्री मोहनलालजी जयपुर प्रिन्टर्स, जयपुर
११०१/- प्रदीप मेल्स कारपोरेशन पायधुनी, मुबई
११०१/- सौ. कमलाबेन हिराभाई शाह, प्रदीप मेल्स पायधुनी, मुबई
११०१/- श्री दिलीप भाई प्रदीप मेल्स कार्पोरेशन, मुबई
११००/- प्रदीपभाई प्रदीप मेल्स कार्पोरेशन पायधुनी, मुबई
११०१/- सौ. कुसुमबाई पाटनी ध.प. श्री शान्तिलालजी पाटनी, छिंदवाड़ा
११०१/- सौ. मजु पाटनी ध.प. श्री सतोषकुमार पाटनी बासिम
११०१/- स्व. कुसुम देवी ध. प. स्व. श्री कोमल चंद जी की स्मृति में अजय राज जी जैन भोपाल
११०१/- सौ. इन्द्राणी देवी ध. प. श्री बाबमल जी पवैया भोपाल
११०१/- सौ. शकुन्तला ध. प. श्री धीरेन्द्र कुमार जी जैन भोपाल
११०१/- स्व. पुतली बाई ध. प. स्व दीपचंद जी पाड्या (अतुल पब्लिसिटी भोपाल)
११०१/- श्री झकारी भाई खेमराज बाफना चेरीटेबिल ट्रस्ट खैरागढ
१११०१/- सौ. कमल प्रभा ध. प. श्री मानिक चद जी लुहाड़िया नई दिल्ली
१११०१/- स्व. श्री उमरावदेवी ध. प. श्री जगनमल जी सेठी इम्फाल
११०१/- सौ. आभा देवी ध. प. प्रकाश चंद जी जैन रायपुर

११०१/- सौ. कमला देवी ध. प. श्री राधेश्याम जी अग्रवाल भोपाल
११०१/- श्री अमर सिंह जी अमरेश समस्तीपुर (बिहार)
२५०१/- श्रीमती रतन बाई ध. प. स्व. श्री केशरी मल जी पांड्या इन्दौर
११०१/- सौ. मधु ध. प. श्री वीरेन्द्र कुमार जी जैन नई दिल्ली
२१०१/- जैन जाग्रति महिला मंडल गुना (म. प्र.)
११०१/- सौ. ज्योति ध. प. श्री सुरेश चद जी जैन पारस स्टोर्स गुना
११०१/- श्री शकुन्तला देवी ध. प. स्व. श्री दरबारी लाल जी जैन दिल्ली
११०१/- श्री सौ. रोहिणी देवी ध.प.श्री मनोहरजी श्री धनचद्रजी अथणे कोल्हापुर
११०१/- श्री शान्तिदेवी ध.प. स्व. पाडे मूलचदजी जैन इटावा मातेश्वरी श्री वीरेन्द्र कुमार , सिलचर नरेन्द्र कुमार जी भोपाल
११०१/- सौ. सुमनेश ध.प. श्री वीरेन्द्रकुमार जैन सिलचर (आसाम)
११००१/- श्रीमत सेठ शितावराय जी लक्ष्मी चद जी साहित्योद्धारक फड विदिशा
११०१/- श्री सौ किरण चौधरी ध प श्री महेन्द्र कुमार जी चौधरी भोपाल
११०१/- श्री सौ शशि ध प श्री आदित्य रंजन जेन राज ट्रेक्टर्स बीना
११०१/- श्री सौ चमेली बाई ध प श्री कस्तूर चद जी जैन सिलवानी वाले भोपाल
११०१/- सौ कमलेश ध प गेदालाल जी सराफ चदेरी
११०१/- श्री रामप्रसाद जी हजारीलाल जी भडारी भोपाल
११०१/- श्री विश्वभर दास जी महावीर प्रसाद जी जेन सराफ दिल्ली
५००१/- श्री फूलचद जी विमलचद जी झाझरी उज्जैन
११०१/- श्री दि जैन शिक्षण समिति, रामाशाह मदिर, मल्हारगज, इन्दौर
११०१/- सौ अजु देवी ध प अजय सोगानीमोटर हाऊस भोपाल
११०१/- स्व शान्ताबेन ध प श्री शान्ति भाई जवेरी मुंबई
११०१/- श्री बसती बाई ध प स्व श्री हरख चद जी छावडा मुंबई
११०१/- सौ शशि ध प श्री अशोककुमारजी छावड़ा सूरत
११०१/- स्व कान्ताबेन मोतीलालजी पारिख की स्मृति में प्र रमा बेन पारिख देवलाली
११०१/- श्री मदन लालजी अनिल कुमारजी जैन, अनिल बैंगल्स, भोपाल
११०१/- श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री मानिक चंद जी जैन गुड वाले, भोपाल
११०१/- श्री जिन प्रभावना ट्रस्ट प्रो सुमत प्रकाश जी जैन भोपाल
११११/- श्री जैन स्वाध्याय मडल पढरपुर
११००१/ श्री केशरी चद जी पूनम चंद्र जी सेठी ट्रस्ट, नई दिल्ली

१९०१/- सौ प्रतिभा देवी ध प श्री मनोज कुमार जैन मुजफ्फर नगर
१९०१/- सौ ममता देवी ध फ श्री आदीश कुमार जी पीरागढी नई दिल्ली
१९०१/- प्रमिला देवी ध प श्री मांगीलाल जी पहाडिया इन्दौर
१९०१/- श्री गोकल चद जी चुन्नी लाल जी की स्मृति में सुपुत्र श्री मागी लाल जी पहाडिया इन्दौर
१९०१/- सौ सुधा ध प श्री प्रवीण कुमार जी लुहाडिया नई दिल्ली
१९०१/- सौ पुष्पादेवी ध प श्री सतीश कुमार जी जैन नई दिल्ली
१९०१/- सौ रमा जैन ध प श्री दृगेन्द्र कुमार जी नई दिल्ली
१९०१/- अशोक कुमार जी सुपुत्र श्री दरबारीमल जी नई दिल्ली
१९०१/- श्री स्व मेमोदेवी ध प श्री अजित प्रसाद जी पीतल वाले नई दिल्ली
१९०१/- सौ कौशल्या देवी ध प श्री इन्द्र सेन जी शाहदरा दिल्ली
१९०१/- स्व निर्मला देवी ध प श्री पृथ्वी चद्र जी जैन नई दिल्ली
१९०१/- सौ विमला देवी ध प श्री विमल कुमार जी सेठी इन्दौर
१९०१/- सौ कमला देवी ध प वाणी भूषण प ज्ञान चद्र जी विदिशा
१९०१/- श्री कचन वाई ध प स्व हुकुम चद्र जी पाटनी मातेश्वरी आनद कुमार जी देवेन्द्र कुमार जी इन्दौर
१९०१/- श्री स्व सुन्दर वाई ध प श्री छोटेलाल जी पाडे झासी की स्मृति मे सुपुत्र श्री सुरेन्द्र कुमार जी
१९०१/- सिघई श्री सुन्दरलालजी सुभाष ट्रान्सर्पोट प्रा लि भोपाल
१९०१/ स्व पडित आनदीलालजी जैन विदिशा
१९०१/- सौ तारावाई ध प श्री राजमल जी मिट्ठूलाल जी नरपत्या, भोपाल
१९०१/- सौ कुसुम जैन ध प. प्रो श्री महेश चन्द्र जी जैन गोहद
१९०१/- सौ आशा देवी ध प श्री पी सी जैन प्रबधक स्टेट बैंक भोपाल
१९०१/- सौ धनश्री बाई ध प श्री कपूर चद्र जी जैन भोपाल
१९०१/- सौ सावित्री बाई ध प चौधरी सुभाष चद्र जी जैन भोपाल
१९०१/- स्व श्री आभा देवी ध प श्री सुरेन्द्र कुमार जी सौगानी भोपाल
१९०१/- सौ श्री चद्रकान्ता ध प श्री महेन्द्र कुमार जी जैन समन सुखा भोपाल
१९०१/- सौ सविता देवी ध प श्री अरुणकुमारजी जैन, भोपाल
१९०१/- सौ चम्पा देवी ध प श्री लक्ष्मी चद्र जी महावीर टैन्ट हाऊस, भोपाल
१९०१/- सौ वीणा देवी ध प श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन आम्रपाली भोपाल
१९०१/- सौ विद्यादेवी ध प. श्री देवेन्द्र कुमार जी सौगानी भोपाल

१२०१/- श्री देवेन्द्र कुमार जी पाटनी मल्हारगज इन्दौर
११०१/- सौ शकुन्तला देवी ध प श्री पदम चद्र जी भौंच जयपुर
११०१/- सौ भंवरी देवी ध प श्री घीसालाल जी छाबडा जयपुर
११०१/- सौ कचन देवी ध प श्री जुगराज जी कासलीवाल कलकत्ता
११०१/- सौ शान्ति देवी ध प पारसमल जी पाटनी अजमेर
११०१/- सौ गुलाब देवी ध प श्री लक्ष्मी नारायण जी जैन शिवसागर आसाम
११०१/- स्व प्रेमवती देवी ध प स्व सेठ मनीराम जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ शान्ति देवी ध प स्व श्री सेठ मुन्शीलाल जी फिरोजाबाद
११०१/- सौ विमला देवी ध प श्री सेठ चद्र कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ शकुन्तला देवी ध प स्व श्री जय कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ उर्मिला देवी ध प श्री अशोक कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ शशिबाला देवी ध प श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ सुलोचना देवी ध प श्री सुरेशचद्र जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ सुषमा देवी ध प श्री प्रमोद कुमार जी जैन फिरोजाबाद
११०१/- सौ राजमती देवी ध प श्री उग्रसेन जी सर्राफ फिरोजाबाद
११०१/- सौ निशादेवी ध प श्री प्रदीप कुमार जी सर्राफ फिरोजाबाद
११०१/- सौ विमला देवी ध प श्री चद्रसेन जी जैन बडामुहल्ला फिरोजाबाद
११११/- सौ सरोज देवी ध प श्री कोमल चद्र जैन बामौरा वाले भोपाल
११११/- श्री पूनम चद्र जी वरदीचद्र जी पाटनी पारमार्थिक ट्रस्ट रतलाम
११११/- सौ विमला देवी ध प स्व श्री सोहन लाल जी अग्रवाल रतलाम
११११/- श्री गोपी जी लखमी चद्र जी अजमेरा रतलाम
११११/- स्व कचन बाई जुहारमल जी एव स्व अनिल पाटौदी की स्मृति में दिगबर जैन सोशल ग्रुप रतलाम
११११/- सौ तारादेवी ध प श्री महेन्द्र कुमार मोठिया, रतलाम
११११/- सौ स्नेहलता ध प डॉ सुरेन्द्र कुमार जी जैन रतलाम
११११/- श्रीमती सूरज बाई ध प स्व मन्नालाल जी रावका जैन रतलाम
११११/- श्रीमती विमला देवी ध प कैलाश चंद्र जी पाटौदी रतलाम
११०१/- श्री सरजू बाई मातेश्वरी श्री सुरेश चंद्र जी जैन, भोपाल
११०१/- स्व श्री लक्ष्मीबाई ध प श्री मिट्ठूलाल जी नरपत्या भोपाल
११०१/- श्रीमती संतोष जैन ध प स्व श्री रतन कुमार जी जैन , जैन को हमीदिया रोड भोपाल

१९०१/- श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल अहमदाबाद (चौसठ ऋद्धि विधान पर)
१९०१/- स्व फूलाबाई एव स्व. श्रीपालजी (माता-पिता) की स्मृति में,
राजमल बागमल पवैया, भोपाल
१९०१/- श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर
५००१/- श्री हीराभाई शाह प्रदीप सेल्स कारपोरेशन मबुई
१९०१/- श्री ए आनद कुमार जी समयसार सदन मैसूर
१९०१/- श्री रेशम बाई ध प. स्व श्री लाभमल जी भोपाल
१९०१/- सौ मिनी देवी ध प श्री शान्ति कुमार जी विनोद भोपाल
१९०१/ सौ चद्र प्रभा देवी ध प श्री डॉ कपूर चद जी कौशल भोपाल
१९०१/- श्री स्व कमला देवी ध प श्री पदम कुमार जी जैन करनाल
१९०१/- श्री नथमल जी लूणिया नवरग पटना
१९०१/- श्री सौ सुधा वेन ध प श्री शशिकान्त वकील मुबई
१९०१/- श्री गोसर भाई हीर जी भाई एकवोकेट हाई कोर्ट मुबई
१९०१/- सौ नीलावेन ध प श्री विक्रम भाई कामदार मूबई
१९०१/- श्री उल्लास भाई जोवलिया मुवई
५००१/ श्री सौ मजुला वेन कवीनभाई पारिख मुवई
१९०१/ श्री अनत भाई अमोलख भाई मूवई
१९०१/- श्री सौ मधुकान्ता वेन रमेश भाई मेहता मूबई
५००१/- श्री पूज्य कान जी स्वामी स्मारक ट्रस्ट देवलाली
५००१/- श्री दिगबर जैन मुमुक्षु समाज अशोक नगर
१९०१/- श्री रत्नीबाई ध. प श्री बाबूलाल जी अशोक नगर
१९०१/- श्री सौ सरोज देवी ध प श्री डॉ बाबूलाल जी अशोक नगर
१९०१/- श्री धीरज लाल जी मलूकचद जी कामदार मुबई
१९०१/- श्री बा ब्र सुकुमाल जी झाझरी उज्जैन
३००१/- श्री जैन युवा फेडरेशन द्वारा श्री प्रदीप झाझरी उज्जैन
१९०१/- सौ गीता गोइनका ध प श्री सावल प्रसाद जी गोइनका भोपाल
१९०१/- सौ स्नेह लता गोइनका ध. प. श्री अरविन्द गोइनका भोपाल
१९०१/- सौ राजकुमारी तिवारी ध प श्री देवी शरण जी तिवारी भोपाल
१९०१/- सौ रेशम बाई ध प. श्री सौभाग्यमल जी स्व. सेनानी भोपाल
५००१/- स्व श्री गजरादेवी की स्मृति में श्री फूलचद जी चौधरी न्यू मुबंई
१९०१/- श्री ओखी बाई ध. प श्री स्व जसराज जी बागरेचा बेंगलोर

१९०१/- श्री सौ ललिता बाई ध प श्री अशोक कुमार जी बागरेचा बैंगलोर
११०१/- श्री शान्ति लाल जी भायाणी मद्रास चेन्नई
५००१/- ✓ स्वस्ति श्री भट्टारक चारु कीर्ति स्वामी जी जैनमठ श्री क्षेत्र श्रवण बेलगोला
(सममयसार विधान के उपलक्ष्य में)
११०१/- श्री अनिल जी सेठी सुपुत्र श्री पूनम चद जी सेठी बैंगलोर
११०१/- श्री सुभाष जी सेठी सुपुत्र पूनम चद जी सेठी कलकत्ता
११०१/- श्री सुशील जी सेठी सुपुत्र श्री पूनम चद जी सेठी नई दिल्ली
११०१/- कुमारी समता सुपुत्री आशा देवी जैन गोराकुन्ड इन्दौर
११०१/- दि जैन शिक्षण समिमति मल्हारगज इन्दौर
११०१/- ब्र हीराबेन दि जैन महिला श्राविका श्रम कचन बाग इन्दौर
११०१/- श्री किशोरी बाई अध्यापिका महू
११०१/- सौ कुसुमलता ध प श्री कैलाश चद पाडया इन्दौर
११०१/- श्री केशर बाई ध प स्व श्री चौथमल जी पाडया इन्दौर
११०१/- श्री जयती भाई दोशी, दादर मुबई
११०१/- श्री दिगबर जेन मदिर समिति पिपलानी भोपाल
११०१/- श्री गीतादेवी C/o श्री राकेश कुमार जैन दिल्ली
११०१/- श्री कुसुम लता ध प डॉ बी सी जेन देहरादून
११०१/- चि शशाक एव लोकान्त सुपौत्र श्री हेमचद्र जी जैन देहरादून
११०१/- चि कुमारी सुरभि सुपौत्री श्री हेमचद्र जी जैन देहरादून
११०१/- श्री सौ स्नेहलता ध प श्री चौधरी शान्ति लाल जी भीलबाडा
२१०१/- ✓ श्री सौ शशि प्रभा ध प श्री प्रकाश चद जी लुहाडिया इन्दौर
११०१/- सौ केशरबाई ध प श्री नेमीचद जी आमल्या वाले गुना
११०१/- स्व श्री पुष्पा देवी ध प श्री केवल चद जी कुभराज वाले उज्जैन
११०१/- सौ मजुला बेन ध प श्री जयती लाल जी शाह मुनाई वाले मुबई
५००१/- ✓ श्री महावीर दि जैन ट्रस्ट चिमन गज उज्जैन द्वारा ब्र श्री सुकुमार जी झाझरी
११०१/- सौ मनोरमा देवी ध प. श्री नेमी चद जी पहाडिया पीसागज (अजमेर)
२००१/- ✓ श्रीमती सेठानी पुष्पा बाई ध प स्व कृषि पडित श्रीमत सेठ ऋषभ कुमार
जी खुरई
११०१/- सौ मीनादेवी ध प श्री संतोष कुमार जी जैन एडवोकेट भोपाल
११०१/- श्री सुभाष चद जी अनुज कुमार जी जैन सराब अगस्त
११०१/- श्री सौ मेमोदेवी ध. प. श्री विजय सेन जी जैन दिल्ली

११०१/-	श्री सौ सुशीला देवी ध प श्री लक्ष्मी चंद जी होजखास नई दिल्ली
११०१/-	श्री सतोष देवी ध प स्व मदन लाल जी जैन करोल बाग दिल्ली
११०१/-	सौ उषा देवी ध प श्री सुनील कुमार जी करोल बाग दिल्ली
११०१/-	श्री डा सुरेका एम एस ध प श्री डा गिरीश एम डी दिल्ली
११०१/	श्री सौ पूनम ध प श्री सुनील कुमार जी जैन आनदपुरी मेरठ
११०१/-	श्री जवर चद जी ज्ञान चंद जी परमार्थिक ट्रस्ट सनावद
११०१/-	श्री कॅवर सेन जी ज्ञान चंद जी परमार्थिक ट्रस्ट सनावद
११०१/-	श्री एस पी जैन नरीमन प्वाइन्ट मुबई
११०१/-	श्री सौ रक्षा देवी ध प श्री अमृत भाई चंद्र लोक कालोनी इन्दौर

ॐ

हमारा अर्ध शतक

तारादेवी पवैया ग्रथमाला की स्थापना के समय हमारा संकल्प था कि हम ग्रथमाला से १०८ पुस्तके प्रकाशित करेगे ।

आज सूचित करते हुए हमें हर्ष है कि अर्ध शतक पूरा हुआ यह पचासवा पुष्प तत्त्वानुशासन विधान आपके कर कमलों में समर्पित है। यह हमारा सौभाग्य है कि ग्रंथमाला द्वारा सर्वोत्कृष्ट आध्यात्मिक विधानो का प्रकाशन हुआ है । अध्यात्म प्रेमियो में इनका प्रचार प्रसार बढा है।

यह हमारे लिए गौरव की बात है, हमे चाहिए आपका पावन आशीर्वाद कि हम ग्रन्थमाला के १०८ पुष्प प्रकाशित करने मे समर्थ हों।

इत्यलम् !

४४ इब्राहीमपुरा
भोपाल ४६२ ००१
फोन ५३१३०९

भरत पवैया
संयोजक

ॐ

श्री तत्त्वानुशासन विधान

के बीजाक्षर एव ध्यानसूत्र रचनाकार

श्री क्षुल्लिका सुशीलमति जी एवं क्षुल्लिका श्री सुव्रता जी फलटण

स्व १०८ श्री आचार्य वीरसागर जी महाराज की सुशिष्याए

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

ओङ्कारंभक्ति संयुक्त नित्यध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षद चैव ओङ्काराय नमो नमः ॥
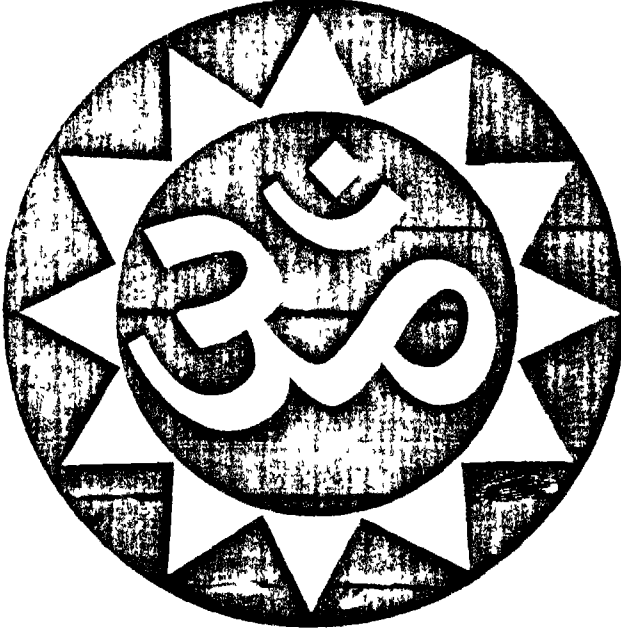
अरहता असरीरा आइरियातहउवज्झया मुणिणो ।
पढमक्खरणिप्पण्णो ओंकारो पंचपरमेट्ठी ॥

राजमल पवैया रचित शताधिक पुस्तकों में से कुछ पुस्तकें

१ चतुर्विंशति तीर्थंकर विधान
२ तीर्थंकर निर्वाण क्षेत्र विधान
३ सम्मेद शिखर विधान
४ वृहद् इन्द्रध्वजमंडल विधान
५ शान्ति विधान
६ विद्यमान बीस तीर्थंकर विधान
७ चौसठ ऋद्धि विधान
८ पचमेरु विधान
९ नदीश्वर विधान
१० जिन गुण सपत्ति विधान
११ तीर्थंकर महिमा विधान
१२ याग मडल विधान
१३ पचपरमेष्ठी विधान
१४ पच कल्याणक विधान
१५ कर्म दहन विधान
१६ जिन सहस्रनाम विधान
१७ कल्पद्रुम विधान
१८ गणधर वलय ऋषिमडल विधान
१९ जैन पुजाजलि
२० तीर्थ क्षेत्र पुजाजलि
२१ श्रुत स्कध विधान
२२ पूजन किरण
२३ पूजन पुष्प
२४ पूजन दीपिका
२५ पूजन ज्योति
२६ मगल पुष्प प्रथम
२७ मगल पुष्प द्वितीय
२८ मगल पुष्प तृतीय
२९ समकित तरग
३० नित्यपाठ अपूर्व अवसर
३१ तीस चौबीसी विधान
३२ आदिनाथ भरत बाहुबलि पूजन
३३ आदिनाथ शातिनाथ
३४ शाति कुन्थु अरनाथ
३५ शाति पार्श्व महावीर
३६ नेमि पार्श्वनाथ महावीर
३७ गोम्मटेश्वर बाहुबलि
३८ भगवान महावीर
३९ जैन धर्म सार्व धर्म
४० वीरो का धर्म
४१ जन मगल कलश
४२ जीवन दान
४३ सिद्ध चक्र वदना
४४ तीनलोक तीर्थ यात्रा गीत
४५ भक्तामर विधान
४६ चतुर्विंशति स्तोत्र
४७ जिनेन्द्र चालीसा सग्रह
४८ चतुर्दश भक्ति
४९ जिन सहस्रनाम हिन्दी
५० जिन वदना
५१ मुनि वन्दना
५२ आत्म वन्दना
५३ पचास्तिकाय विधान
५४ अनुभव
५५ परमब्रह्म
५६ सैतालीस शक्ति विधान
५७ कुन्दकुन्द महिमा
५८ कुन्दकुन्द वाणी
५९ इन्द्रध्वज विधान
६० एक सौ सत्तर तीर्थंकर विधान
६१ कुन्दकुन्द वचनामृत
६२ श्री कल्पद्रुम मडल विधान
६३ श्री तत्वार्थ सूत्र विधान
६४ श्री दसलक्षण विधान
६५ श्री प्रवचन सार विधान
६६ श्री नियमसार विधान
६७ श्री अष्टपाहुड़ विधान
६८ श्री समयसार विधान
६९ श्री रत्नकरड श्रावकाचार विधान
७० श्री परमात्म प्रकाश विधान
७१ श्री षटखंडागम सत्प्ररूपणा विधान
७२ कार्तिकेयानुप्रेक्षा विधान
७३ श्री पुरुषार्थ सिद्धि उपाय विधान
७४ श्री योगसार विधान
७५ श्री द्रव्य संग्रह विधान
७६ श्री कसायपाहुड विधान
७७ समाधि शतक विधान
७८ श्री गोम्मटसार विधान
७९ श्री समयसार कलश विधान
८० श्री पद्मनन्दि श्रावकाचार विधान
८१ श्री धर्मोपदेशामृत विधान
८२ तत्वानुशासन विधान
८३ श्री दानोपदेश विधान
८४ इष्टोपदेश विधान
८५ श्री तत्वज्ञान तरंगिणी विधान
८६ श्री श्रवण बेलगोला विधान
८७ श्री ज्ञानार्णव विधान
८८ श्री आत्मानुशासन विधान

जिनेन्द्र स्तुति

छंद-गीतिका

अत भव का निकट आया आपके दर्शन किये ।
पुष्प सम्यक् ज्ञान के प्रभु आपने मुझको दिये ॥
सदाचारी आचरण हे प्रभु सिखाया आपने ।
धर्म श्रावक तथा मुनि का बताया प्रभु आपने ॥
आपका उपकार स्वामी भूल सकता हू नही ।
मिला सत्पथ अब कुपथ पर कभी जा सकता नहीं ॥
शरण पाकर आपकी मै तत्त्व निर्णय करूँगा ।
नाथ समकित प्राप्त करके मोह भ्रम तम्र हरूँगा ॥
आज उर अम्बुज सहज जिन रवि किरण पाकर खिला।
जिन बिम्ब दर्शन का सुफल हे नाथ अब मुझको मिला॥

अभिषेक स्तुति

मैने प्रभु के चरण पखारे ।
जनम, जनम के सचित पातक तत्क्षण ही निरवारे ॥१॥
प्रासुक जल के कलश श्री जिन प्रतिमा ऊपर ढारे ।
वीतराग अरिहत देव के गूजे जय जय कारे ॥२॥
चरणाम्बुज स्पर्श करत ही छाये हर्ष अपारे ।
पावन तन मन, नयन भये सब दूर भये अंधियारे ॥३॥

करलो जिनवर की पूजन

करलो जिनवर की पूजन, आई पावन घडी।
आई पावन घडी मन भावन घडी॥१॥
दुर्लभ यह मानव तन पाकर, कर लो जिन गुणगान।
गुण अनन्त सिद्धों का सुमिरण, करके बनो महान॥करलो.॥२॥
ज्ञानावरण, दर्शनावरणी, मोहनीय अतराय।
आयु नाम अरु गोत्र वेदनीय, आठों कर्म नशाय॥करलो ॥३॥
धन्य धन्य सिद्धों की महिमा, नाश किया ससार।
निज स्वभाव से शिवपद पाया, अनुपम अगम अपार॥करलो.॥५॥
रत्नत्रय की तरणी चढ़कर चलो मोक्ष के द्वार।
शुद्धातम का ध्यान लगाओ हो जाओ भवपार॥करलो.॥६॥

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु
अरिहंतों को नमस्कार है, सिद्धों को सादर वंदन।
आचार्यों को नमस्कार है, उपाध्याय को है वन्दन।।१।।
और लोक के सर्वसाधुओं को है विनय सहित वन्दन।
पच परम परमेष्ठी प्रभु को बार-बार मेरा वन्दन।।२।।
ॐ ह्रीं श्री अनादि मूलमंत्रेभ्यो नमः पुष्पांजलिं क्षिपामि।
मगल चार, चार है उत्तम चार शरण में जाऊ मैं।
मन वच काय त्रियोग पूर्वक, शुद्ध भावना भाऊ मैं।।३।।
श्री अरिहंत देव मगल है, श्री सिद्ध प्रभु है मगल।
श्री साधु मुनि मगल है, है केवलि कथित धर्म मगल।।४।।
श्री अरिहंत लोक में उत्तम, सिद्ध लोक में है उत्तम।
साधु लोक में उत्तम है, है केवलि कथित धर्म उत्तम।।५।।
श्री अरिहंत शरण मे जाऊ, सिद्ध शरण में मैं जाऊ।
साधु शरण मे जाऊ, केवलि कथित धर्मशरणा पाऊ।।६।।

ॐ ह्रीं नमो अर्हते स्वाहा पुष्पांजलि क्षिपामि।

अर्घ्य

जल गधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य धरूँ।
जिन गृह मे जिन प्रतिमा सम्मुख सहस्त्रनाम को नमन करूँ।।

ॐ ह्री भगवत् जिन, सहस्त्रनामेभ्यो अर्घ्य नि ।

जल गधाक्षत, पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ धरूँ।
जिन गृह में जिनराज पच कल्याणक पाँचों नमन करूँ।।

ॐ ह्री जिन पच कल्याणकेभ्यो अर्घ्य ।

जल गधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ्य करूँ।
तीन लोक के कृत्रिम अकृत्रिम जिन बिम्बों को नमन करूँ।।

ॐ ह्री त्रैलोक्य संबधी कृत्रिम, अकृत्रिम जिनालय जिन बिम्बेभ्यो अर्घ्य ।

जल गधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ करूँ।
जिन गृह में सर्वज्ञ दिव्यध्वनि जिनवाणी को नमन करूँ।।

ॐ ह्री श्री जिन मुखोद्भूत श्रुतज्ञानेभ्यो अर्घ्य ।

जल गधाक्षत पुष्प सुचरु ले दीप धूप फल अर्घ करूँ।
जिन गृह में पाँचों परमेष्ठी के चरणों में नमन करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु पच परमेष्ठीभ्यो अर्घ्य ।

स्वस्ति मंगल

मंगलमय भगवान वीर प्रभु मगलमय गौतम गणधर।
मंगलमय श्री कुन्दकुन्द मुनि मंगल जैन धर्म सुखकर।।१।।
मगलमय श्री ऋषभदेव प्रभु मंगलमय श्री अजित जिनेश।
मंगलमय श्री सभव जिनवर मगल अभिनदन परमेश।।२।।
मगलमय श्री सुमति जिनोतम मगल पद्मनाथ सर्वेश।
मगलमय सुपार्श्व जिन स्वामी मगल चन्द्राप्रभु चन्द्रेश।।३।।
मगलमय श्री पुष्पदत प्रभु, मगल शीतलनाथ सुरेश।
मगलमय श्रेयासनाथ जिन मगल वासुपूज्य पूज्येश।।४।।
मंगलमय श्री विमलनाथ विभु, मगल अनन्तनाथ महेश।
मगलमय श्री धर्मनाथ जिन मगल शातिनाथ चक्रेश।।५।।
मगल कुन्थुनाथ जिन मगल मंगल श्री अरनाथ गुणेश।
मगलमय श्री मल्लिनाथ प्रभु मगल मुनिसुव्रत सत्येश।।६।।
मगलमय नमिनाथ जिनेश्वर मगल नेमिनाथ योगेश।
मगलमय श्री पार्श्वनाथ प्रभु, मगल वर्धमान तीर्थेश।।७।।
मगलमय अरिहत महाप्रभु, मगल मर्व मिद्ध लोकेश।
मगलमय आचार्य श्री जय मगल उपाध्याय ज्ञानेश।।८।।
मगलमय श्री सर्वसाधुगण , मंगल जिनवाणी उपदेश।
मगलमय मीमन्धर आदिक, विद्यमान जिन बीस परेश।।९।।
मगलमय त्रैलोक्य जिनालय, मगल जिन प्रतिमा भव्येश।
मगलमय त्रिकाल चौबीसी, मंगल समवशरण सविशेष।।१०।।
मगल पंचमेरु जिन मदिर, मगल नन्दीश्वर द्वीपेश।
मगल सोलह कारण दशलक्षण, रत्नत्रय व्रत भव्येश।।११।।
मंगल सहस्त्र कूट चैत्यालय मगल मानस्तम्भ हमेश।
मंगलमय केवलि श्रुतकेवलि मगल ऋद्धिधारि विद्येश।।१२।।
मंगलमय पांचों कल्याणक, मंगल जिन शासन उद्देश।
मंगलमय निर्वाण भूमि, मंगलमय अतिशय क्षेत्र विशेष।।१३।।
सर्व सिद्धि मगल के दाता हरो अमंगल हे विश्वेश।
जब तक सिद्ध स्वपद ना पाऊं तब तक पूजूं हे ब्रह्मेश।।१४।।

पुष्पाजलि क्षिपामि

तत्त्वो के निर्णय बिन कैसे आएगे संयम रथ पर ।
सम्यक् पथ कैसे पाएगे चले जा रहे दुष्पथ पर ॥

ॐ

श्री तत्त्वानुशासन विधान

मगलाचरण

अनुष्टुप

मगल सिद्ध परमेष्ठी मगल तीर्थकरम् ।
मगल शुद्ध चेतन्य आत्म धर्मोस्तु मगलम् ॥

दोहा

जयति पचपरमेष्ठी जिनप्रतिमा जिनधाम ।
जय जगदम्बे दिव्य ध्वनि श्री जिन धर्म पणाम ॥
जय परमेष्ठी पचगुरु दिव्य ध्वनि जगदीश ।
जिनगृह प्रतिमा धर्म जिन सतत झुकाऊ शीष ॥

पीठिका

छद दिग्वधू

सर्वोत्तम मगल हे शुद्धात्म तत्त्व पावन ।
ज्ञानाब्धि तरगो से भूषित है मन भावन ॥
इसकी चर्चा सुन्दर उर भेदज्ञान झिलता ।
इसकी छाया मे ही सद्धर्म ज्ञान मिलता ॥
तीर्थकर कहते है निज आत्म तत्त्व धन धन ।
इसके ही आश्रय से कट जाते भव बधन ॥
अनमोल तत्त्व अनुपम महिमा युत मगलमय ।
उत्तम विधान पावन अविनाशी सुखद निलय ॥
जीवत शक्तिदाता शिवमार्ग बताता है ।
आनद अतीन्द्रिय का यह स्रोत दिखाता है ॥

दूज चंद्रसम गुणस्थान चौथे मे आंशिक अनुभव है ।
पूर्ण चंद्र का अश यही है नही स्वाद मे अंतर है ॥

यह भेद ज्ञान की निधि देता सब जीवो को ।
यह आत्म ध्यान की निधि सिखलाता जीवो को ॥
इसका ही बल पाकर मै आत्म ध्यान कर लू ।
सारे विभाव दुखमय पलभर मे ही हर लूँ ॥
पुष्पाजलि क्षिपामि

भजन

तत्त्वसार ही सार है शेष सभी निस्सार ।
तत्त्वसार को प्राप्त कर पाओ सौख्य अपार ॥
तत्त्वसार ही सार है तीन को बे एक ।
जिसने भी भाया इसे पाया सुख प्रत्येक ॥

पाया जो मैने तत्त्वसार धन पाया ।
ध्याया जी मैने आत्म तत्त्व निज ध्याया ॥
अब तक तो था भव अटवी में घोर महा दुख पाया ।
पुण्य भाव कर स्वर्गादिक साता पा फिर दुख पाया ॥
अवसर आज अपूर्ण मिला जो सद्गुरु कथन सुहाया ।
चक्रवर्त्ति पद बढ करके तत्त्वसार निज भाया ॥
ममहाभाग्य से नर तन पाया जीवन सफल बनाया ।
मुक्ति मार्ग पर चला सजग हो आत्म तत्त्व गुण गाया ॥

मेरी तरणी बढ़ती जाए । भव सागर तरती जाए ॥
लक्ष्य त्रिकाली ध्रुव का ही है । कोई न बाधा पथ में आए ॥
ज्ञान स्वभावी चेतन मेरा । कहीं मार्ग में भटक न जाए ॥
इतना ध्यान मुझे रखना है । तभी मोक्ष की मंज़िल आए ॥

एक बिन्दु है एक सिन्धु है पर है जाति नीर की एक ।
जो पुरुषार्थ करेगा तत्क्षण पाएगा वह सौख्य अनेक ॥

ॐ

श्री रामसेनाचार्य पूजन

छंद समान सवैया

शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मे तो आत्म विभोर हो गया।
स्वपर भेद विज्ञान जगा उर राग द्वेष का नेह खो गया ॥
मोह भ्रान्ति तजने का अवसर अनायास ही मुझे मिल गया।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित रत्नत्रय अबुज हृदय खिल गया॥
अब न रुकावट मोक्षमार्ग मे कोई भी आने वाली हे ।
दिन मे होली रात दिवाली सदा ज्ञानमय अब पाली है ॥
भूत भविष्य वर्त्तमान के स सिद्धो को वन्दन कर ।
रामसेन आचार्य सुमुनि की पूजन करता हूँ तम हर ॥

ॐ ह्रीं राममेन आचार्य अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्री राममेन आचार्य अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन ।
ॐ ह्री राममेन आचार्य अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद गीतिका

ज्ञान सम्यक् झिला उर मे हृदय पुलकित हो गया ।
जन्म मृत्यु जरादि का तम अब तिरोहित हो गया ॥
शुद्ध निज चैतन्य की महिमा हृदय में प्रभु धरूँ ।
रामसेनाचार्य मुनि की भाव से पूजन करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री रामसेनाचायभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं नि ।

शुद्ध चदन भावनामय प्राप्त कर भव ज्वर हरूँ ।
सलिल शीतल ज्ञानधारा प्राप्त कर शिव सुख वरूँ ॥

परम पारिणामिक ध्रुव भावी भाव शाश्वत पूर्ण त्रिकाल।
पूर्णानंद स्वभाव आत्म का जिसमें शिवसुख भरा विशाल॥

शुद्ध निज चैतन्य की महिमा हृदय मे प्रभु धरूँ ।
रामसेनाचार्य मुनि की भाव से पूजन करूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री रामसेनाचार्येभ्यो संसारताप विनाशनाय चदनं नि ।

शुद्ध अक्षत ज्ञान निज के प्राप्त कर भव दुख हरूँ ।
परम शुचिमय आत्मा के विनय से दर्शन करूँ ॥
शुद्ध निज चैतन्य की महिमा हृदय मे प्रभु धरूँ ।
रामसेनाचार्य मुनि की भाव से पूजन करूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री रामसेनाचार्येभ्यो अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि ।

शुद्ध पुष्प अनत गुणमय की सुगध मुझे मिले ।
शील महिमामयी की बरसात प्रभु उर मे झिले ॥
शुद्ध निज चैतन्य की महिमा हृदय मे प्रभु धरूँ ।
रामसेनाचार्य मुनि की भाव से पूजन करूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री रामसेनाचार्येभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्प नि ।

शुद्ध निज चरु तृप्ति दाता क्षुधा नाशक प्राप्त हो ।
परम अनुभव रसमयी आनद उर मे व्याप्त हो ॥
शुद्ध निज चैतन्य की महिमा हृदय मे प्रभु धरूँ ।
रामसेनाचार्य मुनि की भाव से पूजन करूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री रामसेनाचार्येभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि ।

ज्योतिमय निज ज्ञान दीपक प्रज्ज्वलित कर लूं प्रभो ।
मोहतम अज्ञान संशय विपर्यय हर लूं विभो ॥
शुद्ध निज चैतन्य की महिमा हृदय में प्रभु धरूँ ।
रामसेनाचार्य मुनि की भाव से पूजन करूँ ॥
ॐ ह्रीं श्री रामसेनाचार्येभ्यो मोहन्धकार विनाशनाय दीपं नि ।

धूप धर्म प्रभाव की पा शुक्ल ध्यानी ध्यान हो ।
अष्टकर्मो का नगर अब सदा को अवसान हो ॥

भव दुख से भयभीत हुआ जो उसने मुनि पद धार लिया।
यथाख्यात चारित्र प्राप्त कर यह भव सागर पार किया॥

शुद्ध निज चैतन्य की महिमा हृदय में प्रभु धरूँ ।
रामसेनाचार्य मुनि की भाव से पूजन करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री रामसेनाचार्येभ्यो अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

मोक्ष तरुफल प्राप्ति का पुरुषार्थ अनुभव रसमयी ।
सफल करके क्षय करूँ यह भवोदधि जल विषमयी ॥
शुद्ध निज चैतन्य की महिमा हृदय में प्रभु धरूँ ।
रामसेनाचार्य मुनि की भाव से पूजन करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री रामसेनाचार्येभ्यो मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

अर्घ्य आत्म स्वरुप के ही गुणमयी पाऊँ प्रभो ।
पद अनर्घ्य अपूर्व पाने आत्म निज ध्याऊं विभो ॥
शुद्ध निज चैतन्य की महिमा हृदय में प्रभु धरूँ ।
रामसेनाचार्य मुनि की भाव से पूजन करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री रामसेनाचार्येभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

महाअर्घ्य

भुजंगी

चिदानद चैतन्य का पा धराना ।
मिटा आस्रव का झमेला पुराना ॥
नवल निर्जरा नृत्य करने लगी अब ।
मिला आज मौसम बड़ा ही सुहाना ॥
मिला आज इंगित स्वपर ज्ञान वाला ।
हुआ भेद विज्ञान अंतर मे आला ॥
जगी तत्त्व श्रद्धा महामोह नाशक ।
यथाख्यात का बांसुरी निज बजाना ॥

ज्ञानभाव की बजी बांसुरी आयी सहजानदी भोर ।
सुर दुन्दुभियो की ध्वनि गूजी नाच रहा है हृदय चकोर॥

मुझे मुक्ति का पथ मिला आज शाश्वत ।
मिला सत्य सुन्दर शिवम् का खजाना ॥
त्वरित सिद्धपुर के सभी सिद्ध आए ।
खडे मुक्ति के द्वार पर मुस्कुराए ॥
जगे गुण अनंतो जगी शक्तिया सब ।
नही अब किसी ओर है मुझको जाना ॥
फला मोक्ष का तरु अचानक स्वय ही ।
पवन ज्ञान की चल पडी नाना नाना ॥
मुझे तो निजानंद सागर मिला हे ।
नही अब मुझे नाथ कुछ और पाना ॥

ॐ ह्री श्री रामसेनाचार्येभ्यो महाअर्घ्यं नि ।

जयमाला

छंद समान सवैया

एक सहस्र वर्ष के पहिले रामसेन आचार्य हो गए ।
दिया तत्त्व अनुशासन का उपदेश और वे सहज हो गए ॥
इनकी वाणी सुनकर जीव अनेको ने निज सत्पथ पाया ।
समझ ध्यान का लक्षण सबने आत्म ध्यान का वैभव पाया॥
अगर नहीं उपदेश आत्महित का हो तो वह शास्त्र नहीं है।
मोक्षमार्ग उपदेश बिना क्या हो सकता जिनशास्त्र कहीं है॥
श्रेणी उनको ही मिलती है भाव लिग से जो शोभित हो ।
अट्ठाईस मूलगुण पाले द्रव्यलिग में ना मोहित हों ॥
छठे सातवें झूल झूलकर निज पुरुषार्थ बढाते है वे ।
शुक्ल ध्यान ध्याने को अपर अपने चरण चढाते हैं वे ॥

विलय हो गई मोह मूर्छा अनहदनाद बजे घर घर ।
ज्ञाता दृष्टा भाव जगा है पाया ज्ञानचंद्र शिवकर ॥

उपशम श्रेणी अष्टम नवम दशम एकादश तक होती है ।
निश्चित ही गिरना पडता है ऐसी भूल स्वत- होती है ॥
इनमें मरण अपेक्षा प्राणी चौथे में निश्चित आता है ।
अपने अपने परिणामो अनुसार स्वर्ग आदिक पाता है ॥
जो गिरने वाले होते हैं अगर सभलने ना पाएं वे ।
तो फिर निश्चित खोटे परिणामों से पहिले मे आएँ वे ॥
भटकेगे ससार डगर मे पुदगल अर्ध परावर्त्तन तक ।
फिर पुरुषार्थ जगाएँगे वे जाएँगे शिव सौख्य सदन तक ॥
जो क्षायिक श्रेणी चढते है मोह क्षीण बारहवा पाते ।
तेरहवॉ पा फिर चोदहवॉ पाकर सिद्ध लोक मे जाते ॥
मनुज लोक से ही मिलती है सिद्ध दशा अनुपम महिमामय।
जाते है शिवपुर ऋजुगति से जिसमे लगता एक लघु समय॥
जो जिनवर उपदेश करेगा हृदयगम निज निधि पाएगा ।
अष्टकर्म जजाल नष्ट कर निश्चित सिद्धपुरी जाएगा ॥
रामसेन आचार्य सुमुनि की कथनी निज अंतर में लाऊँ ।
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर आत्म ध्यान ही नित प्रति ध्याऊ॥

ॐ ह्रीं श्री रामसेनाचार्येभ्यो जयमाला पूर्णार्घ्य नि. ।

आशीर्वाद

छंद गीतिका

रामसेनाचार्य को वन्दन करूं कल्यण हित ।
जगा निज पुरुषार्थ उत्तम सौख्य निज पाऊ अमित ॥

इत्याशीर्वाद :

निष्कटक सम्यक् पद पाने में सम्यक् दर्शन सक्षम ।
स्वपर विवेक शक्ति दृष्ट है अब तो इसके भीतर थम ॥

ॐ

श्री तत्त्वानुशासन विधान

समुच्चय पूजन

छंद हरिगीत

ग्रथ यह तत्त्वानुशासन भाव पूर्वक नित पढूँ ।
प्राप्त कर सम्यक्त्व वैभव मुक्ति के पथ पर बढूँ ॥
तत्त्व का श्रद्धान करके आत्मा का हित करू ।
सकल भव बधन सदा को स्वबल से हे प्रभु हरूँ ॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन शास्त्र अत्र अवतर अवतर सवौषट् ।
ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन शास्त्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापन ।
ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन शास्त्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

अष्टक

छंद मानव

जन्मादिक त्रिविध रोग की पीडा अनत दुखदायी ।
अनुभव रस जल की धारा ही है अनत सुखदायी ॥
निज आत्म तत्त्व अनुशासन मगलमय मगल कर्त्ता ।
परिपूर्ण सौख्य दाता है है सर्व अमंगल हर्त्ता ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जल नि ।

भव ज्वर संताप सताता आया अनादि से स्वामी ।
अनुभव रस चंदन पाऊँ जो है अनत गुणधामी ॥
निज आत्म तत्त्व अनुशासन मंगलमय मगल कर्त्ता ।
परिपूर्ण सौख्य दाता है है सर्व अमगल हर्त्ता ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय ससारताप विनाशनाय चदन नि. ।

मोह वारुणी के घट फूटे अनुभव रस के कलश भरे ।
जाग गया पुरुषार्थ सहज ही दशों धर्म मिल गए खरे ॥

भवसागर ज्वाला मे जल अब तक अनंत दुख पाए ।
अक्षत स्वरूप लखत ही शाश्वत सुख के दिन आए ॥
निज आत्म तत्त्व अनुशासन मंगलमय मंगल कर्त्ता ।
परिपूर्ण सौख्य दाता है है सर्व अमगल हर्त्ता ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय अक्षय पद प्राप्ताय अक्षतं नि ।

गुण पुष्प शील मय पाऊँ कामादि व्यथा विनशाऊ ।
अत्युत्तम महाशील पद अपने स्वभाव से पाऊं ॥
निज आत्म तत्त्व अनुशासन मगलमय मगल कर्त्ता ।
परिपूर्ण सौख्य दाता है है सर्व अमंगल हर्त्ता ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय कामबाण विनाशनाय पुष्प नि ।

अनुभव रस निर्मित चरु के पाने का अवसर आया ।
चिर क्षुधा व्याधि क्षय करने का समय स्वयं ही पाया ॥
निज आत्म तत्त्व अनुशासन मंगलमय मगल कर्त्ता ।
परिपूर्ण सौख्य दाता है है सर्व अमगल हर्त्ता ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि ।

निज दीप स्वानुभव वाले ज्योतिर्मय जगमग जगमग ।
मिथ्यात्व मोह तम नाशा मैने पूरा ही लगभग ॥
निज आत्म तत्त्व अनुशासन मंगलमय मंगल कर्त्ता ।
परिपूर्ण सौख्य दाता है है सर्व अमंगल हर्त्ता ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. ।

अनुभव की धूप सुगंधित कठिनाई से पायी है ।
वसुकर्म नाश की बेला स्वयमेव निकट आयी है ॥
निज आत्म तत्त्व अनुशासन मंगलमय मंगल कर्त्ता ।
परिपूर्ण सौख्य दाता है है सर्व अमंगल हर्त्ता ॥

स्वसंवित्ति से ही होता है केवलज्ञान स्व सूर्योदय ।
लोकालोक व्याप्य हो जाता ऐसा उत्तम ज्ञान निलय ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूप नि ।

अनुभव फल महामोक्ष फल मे लेश नही है अतर ।
मुझको ही तो पाना हे पुरुषार्थ जगा अभ्यतर ॥
निज आत्म तत्त्व अनुशासन मगलमय मगल कर्त्ता ।
परिपूर्ण सौख्य दाता है है सर्व अमगल हर्त्ता ॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय मोक्षफल प्राप्ताय फल नि ।

अर्घ्यावलि अनुभव वाली अति निर्मल प्रभु पायी है ।
पदवी अनर्घ्य अनुपम सुख लेकर देखो आयी है ॥
निज आत्म तत्त्व अनुशासन मगलमय मगल कर्त्ता ।
परिपूर्ण सौख्य दाता है है सर्व अमंगल हर्त्ता ॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्य नि ।

महाअर्घ्य

छद विजया

सुगुरु के बिना ज्ञान होता नही है ।
परीक्षा करो फिर उन्हे गुरु बनाओ ॥
कुगुरुओं से रहना सदा दूर चेतन ।
कुगुरु को न अपना कभी गुरु बनाओ ॥
सुगुरु पार ससार के कर ही देता ।
मगर ये कुगुरु तो सदा ही डुबाता ॥
स्वय डूबता है ये पापो के द्वारा ।
कभी भूलकर भी न सत्पथ पै आता ॥
उपल नाव सम इसका जीवन समझना ।
कभी इसकी तरणी पै चढना न चेतन ॥

परम सूक्ष्म परमात्म तत्त्व में भाव पूर्वक हो जब वास ।
शुद्धात्मा संवित्ति सुफल से होता है निज शुद्ध निवास ॥

नहीं इसके झांसों में आना कभी भी ।
सुगुरु का पकड़ हाथ बढना है चेतन ॥
तभी पार पाओगे ससार का तुम ।
परम मोक्ष सुख तुमको शाश्वत मिलेगा ॥
निजानद आनंद का झरना भीतर ।
तुम्हारे हृदय मे स्वत ही झिलेगा ॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय महाअर्घ्य नि ।

जयमाला

छद ताटक

आत्म बिम्ब मे सकल द्रव्य गुण पर्याये सब झलक रहीं ।
कर मे रखे आँवले जैसी निज दर्पण मे ललक रहीं ॥
जो आत्मा से परिचय करने मे आलस्य सदा करते ।
उनकी मिथ्याभ्रम विभावरी अत हीन है हम कहते ॥
भूले है पतवार आपनी भटक रहे चारो गति में ।
है मिथ्यात्व अकिंचित्कर उससे न बध उनकी मतिमें ॥
फँसे राग के चक्कर में वे चितवन शून्य बनाई है ।
समकित पाने की बेला आई पर उसे गँवाई है ॥
आत्म अर्चना भूले हैं वे जड़ प्रतिमा को अर्घ्य चढ़ा ।
वे निगोद की ओर जा रहे धीरे धीरे चरण बढ़ा ॥
एक बून्द आँसू भी उनके नयनों से गिरता न कभी ।
इसीलिए तो कर्म बंध भी उनका तो खिरता न कभी ॥
सोना धूल स्वय हो जाता जो शिवपथ पर आते हैं ।
जीवन पथ का दुर्गमतमतल स्वत: पारकर जाते हैं ॥

जिसने न कभी देखा निज को जिसने न कभी परखा निज को।
वह कैसे पा सकता बोलो अपने शाश्वत स्वभाव निज को॥

जिज्ञासा लेकर जो आते वे ही शिवपथ पाते हैं ।
दर्शन ज्ञान किरीट सुशोभित शीघ्र मोक्ष में जाते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन शास्त्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं नि ।

आशीर्वाद :

दोहा

अनुशासन निज आत्म पर निज आत्मा का होय।
तभी कर्म वसु नाश हो तभी मुक्ति सुख होय ॥

इत्याशीर्वाद :

गीत

जय जिनवाणी शिवसुखदानी सम्यक् ज्ञान प्रदाता ।
ज्ञान वाहिनी मोक्ष दायिनी तीन लोक विख्याता ॥
भव के अज्ञानी जीवों को भव से पार लगाती ।
जो भी चरणों में आता है वही मोक्षसुख पाता ॥
स्वपर प्रकाशक ज्ञान दायिनी गणधर ऋषि गुणगाते ।
सभी भव्य जीवों को हे मां परम सौख्य की दाता ॥
सादर सविनय भाव पूर्वक वन्दन है माँ तुमको ।
शरण तुम्हारी हम आए हैं जय जय जय हे माता ॥

आत्मा में दुख नहीं सुख है अपार ।
यही तो ले जाएगी भव सागर के पार ॥
चहुंगति दुक से ये लेती है उबार ।
शिव सुख मिलता है अपरंपार ॥
आठों कर्मो का कर देती है संहार ।
भव दधि से हो जाता है उद्धार ॥
ज्ञान भावना ही एक मात्र शिवकार ।
एक पात्र यही शाश्वत हितकार ॥

ॐ

श्री तत्त्वानुशासन विधान

श्री रामसेनाचार्य

तत्त्वानुशासन ग्रथ के रचनाकार

समयावधि दसवीं शताब्दी

ॐ

श्री तत्त्वानुशासन विधान

श्री सम्मेद शिखर जी
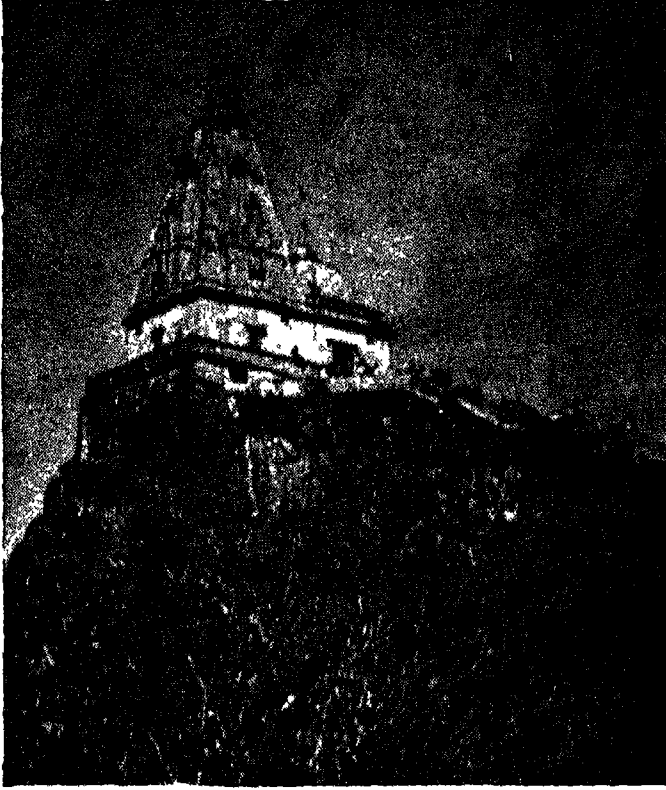
तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ जी की टोक
चरण स्थली

निज से परिचय करता न कभी निज से बातें करता न कभी।
निज की चर्चा न सुहाती है वह भूल गया है कला सभी॥

तत्त्वानुशासन
अर्घ्यावलि

(१)

मूल का मंगलाचरण और प्रतिज्ञा

सिद्ध-स्वार्थानशेषार्थ-स्वरूपस्योपदेशकान् ।
पराऽपर-गुरून्नत्वा वक्ष्ये तत्त्वानुशासनम् ॥१॥

अर्थ- जिनका स्वार्थ सिद्ध हो गया है जिन्होने शुद्ध स्वरूप स्थिति रूप अपने आत्यन्तिक स्वास्थ्य की साधना कर उसे प्राप्त कर लिया है तथा जो सम्पूर्ण अर्थतत्त्व विषयक स्वरूप के उपदेशक हैं जिन्होने केवलज्ञान द्वारा विश्व के समस्त पदार्थों को जानकर उनके यथा का प्रतिपादन किया है उन पर और अपर गुरुवों को समस्त कर्म कलक विमुक्त निष्कल परमात्मा सिद्धो को और चतुर्विध घाति कर्म के मल से रहित सकल परमात्मा अर्हन्तो को तथा अर्हद्वचनानुसारि तत्त्वोपदेश कारि अन्यगणधर श्रुतकेवली आदि गुरुवो को नमस्कार करके मै तत्त्वानुशासन को कहूँगा तत्त्वों का अनुशासन अनुशिक्षण जिसका अभिधेय प्रयोजन है ऐसे तत्त्वानुशासन नामक ग्रन्थ की रचना करूँगा ।

१. ॐ ह्रीं अचिन्त्यश्यात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

अद्वैतस्वरूपोऽहम् ।

ताटंक

जिनके स्वार्थ सिद्ध हो गए उन सिद्धो को है वन्दन ।
कर्म कलंक विहीन सिद्ध प्रभुओं का सादर अभिनन्दन ॥
अर्थ तत्त्व विषयक उपदेशक अरहंतों को करूं नमन ।
गणधर श्रुतकेवली आदि मुनि सबकी करता हूं पूजन ॥
मेरा श्रेष्ठ प्रयोजन तत्त्वों का अनुशासन अनुशिक्षण ।
अत तत्त्व अनुशासन यह रचना की है मैंने भगवन ॥
श्रेष्ठ मंगलाचरण पूर्वक स्वात्मोपलब्धि प्राप्ति के हेतु ।
निज अंतर में लहराऊंगा आध्यात्मिकता का ही केतु ॥

चिन्मय चैतन्य चद्र चचलता रहित चारुचित चिद्रूपी ।
चिच्चमत्कार चन्द्रिका प्राप्त ही जानरहा गुण हो तद्रूपी ॥

शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥१॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२)

वास्तव सर्वज्ञ का अस्तित्व और लक्षण

अस्ति वास्तव-सर्वज्ञः सर्व-गीर्वाण-वन्दितः ।
घातिकर्म-क्षयोद्भूत-स्पष्टानन्त-चतुष्टयः ॥२॥

अर्थ- सर्वदेवो से वन्दित वास्तव सर्वज्ञ सब पदार्थो का यथार्थ ज्ञाता कोई है और वह वह है जिसके घातिया कर्मो के क्षय से प्रादुर्भूत हुआ अनन्त चतुष्टय स्पष्ट हो गया है जिसने ज्ञानावरण दशनावरण, मोहनीय और अन्तराय नाम के चार घातिया कर्मो का मूलत विनाश कर अपने आत्मा मे अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन अनन्तसुख और अनन्तवीर्य नाम के चार महान गुणो को विकसित और साक्षात् किया है।

२ ॐ ह्री घातिकर्मरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अनंतचतुष्टयस्वरूपोऽहम् ।

वास्तविक सर्वज्ञ महा प्रभु का पावन अरहत स्वरूप ।
घाति कर्म क्षय से है प्रादुर्भूत अनत चतुष्टय रूप ॥
ज्ञानावरण दर्शनावरणी मोहनीय अतराय नही ।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर राग द्वेष रज नही कही ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करूं विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(३)

सर्वज्ञ द्वारा द्विधा तत्त्व प्ररूपण और तद्दृष्टि

ताप-त्रयोपतप्तेभ्यो भव्येभ्यः शिवशर्मणे ।
तत्त्वं हेयमुपादेयमिति द्वेधाऽभ्यधादसौ ॥३॥

ज्ञानामृत रस वर्षा पाकर आनदामृत रस बहता है ।
अनुभव रस पीते पीते ही अनुभव रस मे रहता है ॥

अर्थ- उस वास्तव सर्वज्ञ ने तीन प्रकार के तापो से जन्म जरा और मरण के दु खो से अथवा शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक कष्टो से पीडित भव्यजीवो के लिए शिवसुख की प्राप्ति के अर्थ तत्त्व को हेय और उपादेय ऐसे दो भेद रूप वर्णित किया है ।

३ ॐ ह्री तापत्रयोपतप्ततारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शिवशर्मस्वरूपोऽहम् ।

जन्म जरा मरणादि व्याधि त्रय से है रहित आप भगवान ।
नहीं मानसिक शरीरिक सासारिक दुख का नाम निशान ॥
ससारी प्राणी दुख क्षय कर शिव सुख पाए प्रभु अमलान ।
हेय तत्त्व अरु उपादेय तत्त्वो का कर ले सम्यक् ज्ञान ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥३॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(४)

हेयतत्त्व और तत्कारण

बन्धो निबन्धनं चाऽस्य हेयमित्युपदर्शितम् ।
हेयस्याऽशेष-दु:खस्य यसस्माद्बीजमिदं द्वयम् ॥४॥

अर्थ- बन्ध और उसका कारण आस्रव इस तत्त्व युग्म को हेयतत्त्व बतलाया है क्योकि हेयरूप तजने योग्य जो सम्पूर्ण दुख है उसका बीज यह तत्त्व युग्म है सब प्रकार के दु खो की उत्पत्ति का मूल कारण है ।

४ ॐ ह्री दु खबीजस्वरूपबन्धास्रवहेयतत्त्वरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चिदानंदस्वरूपोऽहम् ।

बध तत्त्व अरु उसका कारण आस्रव तत्त्व हेय जाने ।
भव दुख की उत्पत्ति इन्हीं दोनों कारण से है मानें ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर में जागे ज्ञान प्रकाश ॥४॥

रात अँधियारी गई तो दिन सुनहरा हो गया ।
मोह के बादल हटे तो रूप उजला हो गया ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(५)

उपादेयतत्त्व और तत्कारण

मोक्षस्तत्कारणं चैतदुपादेयमुदाहृतम् ।
उपादेय सुख यस्मादस्मादाविर्भविष्यति ॥५॥

अर्थ- मोक्ष और मोक्ष का कारण सवर निर्जरा इस तत्त्वत्रय को उपादेय प्रगट किया है क्योकि उपादेयरूप ग्रहण करने योग्य जो सुख है वह तत्त्वत्रय के प्रसाद से आविर्भाव को पाप्त होगा अपना विकास सिद्ध करने मे समर्थ हो सकेगा ।

५ ॐ ह्री मोक्षसवरनिर्जरातत्त्वविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नित्यानंदस्वरूपोऽहम् ।

मोक्ष और मोक्ष का कारण है सवर निर्जरा महान ।
इन दोनो बिन मोक्ष नही यह आविर्भाव मोक्ष का जान ॥
मोक्ष सौख्य ही उपादेय है होता नव उत्पन्न नही ।
आत्मा का निजगुण स्वभाव आत्मा अतिरिक्त न और कहीं॥
कर्म पटल से आच्छादित है इसके कारण जीव दुखी ।
सवर मोक्ष निर्जरा त्रय पा होता है यह जीव सुखी ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(६)

बन्ध तत्त्व का लक्षण और भेद

तत्र बन्धः स्वहेतुभ्यो यः संश्लेषः परस्परम् ।
जीव-कर्म-प्रदेशानां स प्रसिद्धश्चतुर्विधः ॥६॥

अर्थ- सर्वज्ञ के उस तत्त्व प्ररूपण में जीव और कर्म पुद्गल के प्रदेशो का जो मिथ्यात्वादि अपने बन्ध हेतुओं से परस्पर संश्लेष है सम्मिलन और एकक्षेत्रावगाहरूप अवस्थान है

राग की छाया गई तो ज्ञान का पाया प्रकाश ।
शुद्ध समकित प्रात प्रगटा पा गया अपना निवास ॥

उसका नाम बन्ध है और वह बन्ध चार प्रकार का प्रसिद्ध है।

६ ॐ ह्री चतुर्विधबधरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अबंधस्वरूपोऽहम् ।

मिथ्यात्वादिक बध हेतु है जो है चार प्रकार प्रसिद्ध ।
प्रकृति प्रदेश स्थिति अनुभाग भेद से होते हैं ये बिद्ध ॥
जीव और कर्मो का यह सश्लेश बध कहलाता है ।
इनके कारण जीव भवोदधि मे ही बहता जाता है ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥६॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(७)

बन्ध का कार्य और उसके भेद

बन्धस्य कार्यः संसारः सर्व-दुख-प्रदोऽङ्गिनम् ।
द्रव्य-क्षेत्रादि-भेदेन स चाऽनेकविधः स्मृतः ॥७॥

अर्थ- बन्धतत्त्व का कार्य ससार है भव भ्रमण है जो कि देह धारी ससारी जीवो को सब दु खो का देने वाला है और वह द्रव्यक्षेत्रादि के भेद से द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव परिवर्त्तनादि के रूप मे अनेक प्रकार का है ऐसा सर्वज्ञ के प्रवचन का जो स्मृतिशास्त्र जैनागम है उससे जाना जाता है ।

७ ॐ ह्री बन्धकार्यरूपससाररहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नि:संसारस्वरूपोऽहम् ।

बंध तत्त्व का कार्य भव भ्रमण जीवों को दुख दाता है ॥
द्रव्य क्षेत्र भव काल भाव परिवर्त्तन पच कराता है ॥
यह प्रवचन सर्वज्ञ देव का आगम से जाना जाता ।
क्षय करता जो पचपरावर्त्तन वह प्राणी सुख पाता ॥

गई अविरति असयम गत हुआ सयम का प्रकाश ।
कषायो का तेज दुखमय हो गया पूरा विनाश ॥

शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(८)

बन्ध के हेतु मिथ्यादर्शन आदि

स्युर्मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्राणि समासतः ।
बन्धस्य हेतवोऽन्यस्तु त्रयाणामेव विस्तरः ॥८॥

अर्थ मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ये तीनो सक्षेप रूप से बन्ध के कारण है। बन्ध के कारण रूप मे अन्य जो कुछ कथन है वह सब इन तीनो का ही विस्तार रूप है।

८ ॐ ह्री बन्धकारणमिथ्यादर्शनज्ञानचारित्ररहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

विज्ञानघनस्वरूपोऽहम् ।

बध मूल मिथ्यादर्शन अरु मिथ्या ज्ञान मिथ्याचारित्र ।
तीनो भव बधन के कारण बध हेतु तीनो अपवित्र ॥
अन्य और कारण है वे सब इन तीनो के ही विस्तार ।
इनके क्षय बिन कभी नही मिलता है भव सागर का पार ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनय ।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(९)

मिथ्यादर्शन का लक्षण

अन्यथाऽवस्थितेष्वर्थेष्वन्यथैव रुचिर्नृणाम् ।
दृष्टिमोहोदयान्मोहो मिथ्यादर्शनमुच्यते ॥९॥

अर्थ- मनुष्यो अथवा जीवो के दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से अन्य रूप से अवस्थित पदार्थों मे जो तद्भिन्नरूप से रुचि प्रतीति होती है वह मोह है और उसी को मिथ्यादर्शन कहा जाता

जाने कब समकित आ जाए जाने कब सयम आ जाए ।
जाने कब वह मोक्ष मार्ग पर जाए कब शिवपद पा जाए॥

है।

९ ॐ ह्री दर्शनमोहोदयरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

श्रद्धागुणसंपन्नोऽहम् ।

दर्शन मोहनीय कर्म का उदय सदा ही दुख का घन ।
अन्य पदार्थो मे प्रतीति ही कहलाता मिथ्यादर्शन ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१०)

मिथ्याज्ञान लक्षण और भेद

ज्ञानावृत्त्युदयादर्थेष्वन्यथाऽधिगमो भ्रमः ।
अज्ञानं संशयश्चेति मिथ्याज्ञानमिदं त्रिधा ॥१०॥

अर्थ- ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से पदार्थो मे जो उनके यथावस्थित स्वरूप से भिन्न अन्यथा ज्ञान होता है उसका नाम मिथ्याज्ञान है और यह मिथ्याज्ञान सशय भ्रम तथा अज्ञान ऐसे तीन प्रकार का होता है ।

१० ॐ ह्री ज्ञानावरणकर्मरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानानदस्वरूपोऽहम् ।

ज्ञानावरणी कर्म उदय मे जो विपरीत तत्त्व का ज्ञान ।
निज स्वरूप से भिन्न अन्यथा ज्ञान वही है मिथ्याज्ञान ॥
तीन प्रकार बताया इसको संशय विभ्रम अरु अज्ञान ।
इन तीनो दोषो का क्षय होता तो होता सम्यक् ज्ञान ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करूं विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥१०॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

जाने कब समवाय पांच पा काल लब्धि अपनी आ जाए।
भेदज्ञान की पावन गगा कब अपने उर में लहराए ॥

(११)

मिथ्याचारित्र का लक्षण

वृत्तमोहोदयाज्जन्तोः कषाय-वश-वर्तिनः ।
योग-प्रवृत्तिरशुभा मित्याचारित्रमूचिरे ॥११॥

अर्थ- चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से कषाय वशवर्त्ती हुए जीव की जो अशुभयोग प्रवृत्ति होती है काय, वचन तथा मनकी क्रिया किसी अच्छे भले शुभकार्य मे प्रवृत्त न होकर पाप बन्ध के हेतु भूत बुरे एव निन्द्य कार्यो मे प्रवृत्त होती है उसको मिथ्याचारित्र कहा गया है।

११ ॐ ह्री चारित्रमोहनीयकर्मरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्मोहस्वरूपोऽहम् ।

दर्शन मोहनीय कर्म के उदय पूर्वक जो होता ।
जो कषाय वशवर्त्ती हो मिथ्याचारित्र वही होता ॥
निश्चय से तो कार्य शुभाशुभ की प्रवृत्ति मिथ्याचारित्र ।
शुभ मे नही प्रवृत्ति यही व्यवहार दृष्टि मिथ्याचारित्र ॥
मन वच काय क्रिया का है जो योग वही है भेद सहित ।
एक अशुभ है दूजा शुभ है किन्तु जीव इनसे विरहित ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१२)

बन्ध हेतुओ मे चक्री और मन्त्री

बन्ध-हेतुषु सर्वेषु मोहश्चक्रीति कीर्तितः ।
मिथ्याज्ञानं तु तस्यैव सचिवत्वमशिश्रियत् ॥१२॥

अर्थ- बन्ध के सम्पूर्ण हेतुओ मे मोह चक्रवर्ती कहा गया है और मिथ्याज्ञान इसी के मन्त्रित्व को आश्रय किये हुए है मोह राजा का आश्रित मन्त्री है।

जाने कब निज परिणति आए जाने कब पर परिणति जाए।
जाने कब त्रैकालिक ध्रुव का शुद्ध लक्ष अपना हो जाए॥

१२ ॐ ह्रीं बन्धरकारणरूपमोहचक्रीमिथ्याज्ञानसचिवत्वरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्विकारोऽहम् ।

जो सम्पूर्ण हेतु बध के उनमे मोह चक्रवर्त्ती ।
मिथ्याज्ञान इसी के आश्रय में रहता है भववर्त्ती ॥
ये मिथ्यादर्शन का नृप है ये ही मिथ्याज्ञान नृपति ।
इसके कारण कभी न होती है प्राणी की सम्यक् मति ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥१२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१३)

मोह चक्री के सेनापति ममकार अहकार

ममाऽहकार-नामानौ सेनान्यौ तौ च तत्सुतौ ।
यदायत्तः सुदुर्भेदः मोह-व्यूहः प्रवर्तते ॥१३॥

अर्थ- उस मोह के जो दो पुत्र ममकार और अहकार नाम के हैं वे दोनो उस मोह के सेनानायक है जिनेक अधीन मोहव्यहमोह चक्री का सैन्यसनिवेश बहुत ही दुर्भेद बना हुआ है ।

१३ ॐ ह्री मोहसेनापतिरूपममाहकाररहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्ममस्वरूपोऽहम् ।

अहकार ममकार मोह के दोनो पुत्र महा उद्दड ।
यही मोह के सेना नायक भव दुख दाता क्रूर प्रचड ॥
यदि दुर्भेद मोह गढ क्षय करना है तो यह करो उपाय ।
क्षय ममकार अहकार कर निज स्वरूप निरखो सुखकार॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर में जागे ज्ञान प्रकाश ॥१३॥

मोक्ष के मार्ग पर चलकर जो गुजर जाते हैं ।
उनके परिणाम अपने आप सवर जाते हैं ॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१४)

ममकार का लक्षण

शश्वदनात्मीयेषु स्वतनु-प्रमुखेषु कर्मजनितेषु ।
आत्मीयाऽभिनिवेशो ममकारो मम यथा देहः ॥१४॥

अर्थ सदा अनात्मीय आत्मस्वरूप से बहिर्भूत ऐसे कर्मजनित स्वशरीरादिक मे जा आत्मीय अभिनिवेश है उन्हे अपने आत्मजन्य समझने रूप जो अज्ञानभाव है उसका नाम ममकार है जैसे मेरा शरीर ।

१४ ॐ ह्री अनात्मीयतन्वादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सहजानदस्वरूपोऽहम् ।

जड शरीर को अपना माना यह ममकार बुद्धि दुखरूप ।
अनात्मीय अज्ञान भाव है अभिनिवेश है भव दुख कूप ॥
कोई भी परवस्तु आत्माधीन नही है किसी प्रकार ।
फिर क्यो पर पदार्थ मे करता हे भोले प्राणी ममकार ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥१४॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१५)

अहंकार का लक्षण

ये कर्म-कृता भावा परमार्थ-नयेन चात्मनो भिन्नाः ।
तत्राऽऽत्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपतिः ॥१५॥

अर्थ कर्मो के द्वारा निर्मित जो पर्याये है और निश्चयनय से आत्मा से भिन्न है उनमे आत्मा का जो मिथ्या आरोप है उन्हें आत्मा समझने रूप अज्ञान भाव है उसका नाम अहकार है जैसे मै राजा हूँ ।

उर में है भावना रत्नत्रयी परम सुन्दर ।
वे ही निज अतरग मध्य उतर जाते हैं ॥

१५ ॐ ह्रीं कर्मकृतभावविषयकात्माभिनिवेशरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञाननृपतिस्वरूपोऽहम् ।

कर्म जन्य पर्याये निश्चित निजात्मा से तो है भिन्न ।
अहकार करता तू उनमे जान रहा है उन्हें अभिन्न ॥
मै हूँ सुखी दुखी मै रक नृपति मैं गोरा काला हूँ ।
मै पडित मै अज्ञानी आदिक मै ही मतवाला हूँ ॥
ऐसी खोटी बुद्धि त्याग दे अहकार का येही रूप ।
निश्चय से तो अहकार से विरहित तेरा आत्म स्वरूप ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥१५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१६)

ममकार और अहकार से मोह व्यूह का सृष्टि क्रम

मिथ्याज्ञान्वितान्मोहान्ममाहंकार-संभवः ।
इमकाभ्यां तु जीवस्य रागो द्वेषस्तु जायते ॥१६॥

अर्थ- मिथ्याज्ञान युक्त मोह से जीव के ममकार और अहकार का जन्म होता है और इन दोनो से राग तथा द्वेष उत्पन्न होता है।

१६ ॐ ह्री मोहव्यूहरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अनंतगुणव्यूहस्वरूपोऽहम् ।

मिथ्या ज्ञान युक्त मोह से जीवो को होता ममकार ।
अहकार जन्म लेता है राग द्वेष होता साकार ॥
राग द्वेष के उपादान ये अहकार ममकार विचित्र ।
इनके कारण ही ससारी प्राणी होते नहीं पवित्र ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥१६॥

लक्ष्य अपने भविष्य का वे जानते शिवमय ।
बीते कालो की वे बाते भी बिसर जाते हैं ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१७)

वही कहते हैं

ताभ्यां पुनः कषायाः स्युर्नोकषायाश्च तन्मयाः ।
तेभ्यो योगाः प्रवर्तन्ते ततः प्राणिवधादयः ॥१७॥

अर्थ फिर उन दोनो से कषाये क्रोध, मान, माया, लोभ और नो कषाये हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा तथा काम वासनाये उत्पन्न होती है जो कि राग द्वेष रूप है। उन कषायो तथा नो कषायो से योग प्रवृत्त होते है मन, वचन, तथा काय की क्रियाये बनती है और उन योगो के प्रवर्त्तन से प्राणि वधादिरूप हिंसादिक कार्य होते है।

१७ ॐ ह्री कषायनोकषायादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निष्कामस्वरूपोऽहम् ।

राग द्वेष से सभी कषाये सदा हुआ करती उत्पन्न ।
क्रोधमान माया लोभादिक नो कषाय होती सम्पन्न ॥
मन वच काय क्रियाएँ बनती योग प्रवर्त्तन भी होता ।
प्राणी वध हिंसादिक पापो के कारण दुख तरु बोता ॥
शुभ प्रवृत्ति से पुण्य कार्य करता तो कुछ साता पाता ।
अशुभ प्रवृत्ति हुई तो करता पाप और बहु दुख पाता ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर में जागे ज्ञान प्रकाश ॥१७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१८)

वही कहते है

तेभ्यः कर्माणि बध्यन्ते ततः सुगति-दुर्गती ।
तत्र कायाः प्रजायन्ते सहजानीन्द्रियाणि च ॥१८॥

अर्थ- उन प्रणिवधादिक कार्यो से कर्म बँधते हैं जिनके शुभ तथा अशुभ ऐसे दो भेद है।

सयमी नाव पर चढकर के बढ़ते जाते हैं ।
जा के त्रैलोक्य के शिखर पै ठहर जाते हैं ॥

कर्मो के बन्धन से सुगति तथा गुर्गति की प्राप्ति होती है अच्छे शुभ कर्मो के बन्धन से मनुष्य भव की प्राप्ति रूप सुगति और बुरे अशुभ कर्मो के बन्धन से दुर्गति मिलती है। कर्मो के वश उस सुगति या दुर्गति में जहॉ भी जीव को जाना होता है वहॉ शरीर उत्पन्न होते है और शरीरो के साथ सहज ही इन्द्रियॉ भी उत्पन्न होतीं है चाहे उनकी सख्या एक शरीर मे कम से कम एक ही क्यो न हो।

१८ ॐ ह्रीं सुगतिदुर्गतिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निष्कायस्वरूपोऽहम् ।

जिन परिणामोसे बधते है कर्म शुभाशुभ के परिणाम ।
ये ही सुगति कुगति के दाता बध भाव है भव के धाम ॥
ज्ञानावरणादिक कर्मो की मूल प्रकृतियॉ आठ प्रसिद्ध ।
उत्तर प्रकृति एक सौ अडतालीस न होने देती सिद्ध ॥
उत्तरोत्त भेद प्रभेद असख्यो इनके हो जाते ।
एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक के प्राणी को भरमाते ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥१८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१९)

वही कहते हैं

तदर्थानिन्द्रियैगृक्षणन्मुह्यति द्वेष्टि रज्यते ।
ततो बद्धो भ्रमत्येव मोह-व्यूह-गत: पुमान् ॥१९॥

अर्थ- उन इन्द्रियो के विषयो को इन्द्रियो द्वारा ग्रहण करता हुआ जीव राग करता है द्वेष करता है तथा मोह को प्राप्त होता है और इन राग द्वेष मोह रूप प्रवृत्तियो द्वारा नये बन्धनो से बँधता है। इस तरह मोह की सेना से घिरा तथा उसके चक्कर में फँसा हुआ यह जीव भ्रमण करता ही रहता है।

१९. ॐ ह्रीं इन्द्रियविषयादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अतीन्द्रियानंदस्वरूपोऽहम् ।

वीतरागी स्वभाव से नही है प्रेम जिन्हे ।
वे तो रागो को देखते ही मचल जाते है ॥

इन इन्द्रिय विषयो को इन्द्रिय द्वारा जीव ग्रहण करता ।
राग द्वेष मोहादि भाव द्वारा नूतन बधन करता ॥
मोह सैन्य से घिरा हुआ है फँसा हुआ भव चक्कर मे ।
भूल भुलैयो मे भूला हे ज्ञान स्वय का अतर मे ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥१९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२०)

मुख्य बन्धहेतुओ के विनाशार्थ प्रेरणा

तस्मादेतस्य मोहस्य मिथ्याज्ञानस्य च द्विषः ।
ममाऽहकारयोश्चात्मन् ! विनाशाय कुरूद्यमम् ॥२०॥

अर्थ- अत हे आत्मन् ! इस मिथ्यादर्शन रूप मोह के भ्रमादिक रूप मिथ्याज्ञान के और ममकार तथा अहकार के जोकि तेरे शत्रु है विनाश के लिये उद्यम कर ।

२० ॐ ह्री मोहद्वेषरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्द्वेषस्वरूपोऽहम् ।

मिथ्यादर्शन मोह रूप भ्रम रूप सर्व है मिथ्याज्ञान ।
अहकार ममकार शत्रु सब उद्यम से कर दे अवसान ॥
शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥२०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२१)

मुख्य बन्ध हेतुओ के विनाश का फल

बन्ध-हेतुषु मुख्येषु नश्यत्सु क्रमशस्तव ।
शेषोऽपि राग द्वेषादिर्बन्ध-हेतुर्विनंक्ष्यति ॥२१॥

शुद्ध पर्याय प्रगट करने का ही, यत्न करो ।
जितने अवगुण है विघट करने का प्रयत्न करो ॥

अर्थ बन्ध के मुख्य कारणो मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और ममकार अहकार रूप मिथ्याचारित्र के क्रमश नष्ट होने पर तेरे राग द्वेषादिक रूप शेष जो बन्ध का हेतु कारण कलाप है वह सब भी नाश को प्राप्त हो जायेगा ।

२१ ॐ ह्री बन्धकारणकलापरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नीरागस्वरूपोऽहम् ।

अत आत्मन् मिथ्यादर्शन रूप मोह जयकर तत्काल ।
भ्रममय मिथ्याज्ञान त्याग दे तत्क्षण तेरा जगे स्वकाल ॥
अहकार ममकार रूप मिथ्या चारित्र नष्ट कर दूँ ।
राग द्वेष आदिक जो बधन हेतु उन्हे विनष्ट कर दू ॥
शारत्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥२१॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२२)

समस्त बन्ध हेतुओ के विनाश का फल

ततस्त्वं बन्ध-हेतुनां समस्तानां विनाशतः ।
बन्ध प्रणाशान्मुक्तः सन्न भ्रमिष्यति ससृतौ ॥२२॥

अर्थ- तत्पश्चात् राग द्वेषादिरूप बन्ध के शेष कारणकलाप के भी नाश हो जाने पर तू सारे ही कारणो के विनाश से और बन्धन के भी विनाश से मुक्त हुआ ससार मे भ्रमण नही करेगा ।

२२ ॐ ह्रीं ससृतिभ्रमणरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निश्चलोऽहम् ।

राग द्वेष कारण कलाप बंधो के पूरे कर दे नाश ।
बधन के विनाश से होगा उज्ज्वल निर्मल सिद्ध प्रकाश ॥
बध मुक्त हो जाएगा तो सिद्ध अवस्था पाएगा ।
भव परिभ्रमण कष्ट क्षय होगा उत्तम शिव सुख लाएगा ॥

ध्रुव त्रिकाली का लक्ष्य ले के आप बढ जाना ।
विभावी भाव राग द्वेष को सयत्न हरो ॥

शास्त्र तत्त्व अनुशासन पढकर मिथ्याभ्रम का करू विनाश।
आत्म ध्यान की विधि के द्वारा उर मे जागे ज्ञान प्रकाश ॥२२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२३)

बन्ध हेतु विनाशार्थ मोक्ष हेतु परिग्रह

बन्ध हेतु-विनाशस्तु मोक्षहेतु-परिग्रहात् ।
परस्पर-विरुद्धत्वाच्छीतोष्ण-स्पर्शवत्तयोः ॥२३॥

अर्थ- बन्ध के कारणो का विनाश तब बनता है जब कि मोक्ष के कारणो का आश्रय लिया जाता है क्योकि बन्ध और मोक्ष दोनो के कारण उसी तरह एक दूसरे के विरुद्ध है जिस तरह कि शीत स्पर्श उष्ण स्पर्श के विरुद्ध है शीत को दूर करने के लिए जिस प्रकार उष्णता के कारण और उष्णता को दूर करने के लिए शीत के कारण मिलाये जाते हैं उसी प्रकार बन्ध के कारणो को दूर करने के लिए मोक्ष के कारणो का मिलाना आवश्यक है ।

२३ ॐ ह्री स्वभावविरुद्धबन्धकारणरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

आनंदधामस्वरूपोऽहम् ।

मोक्ष हेतु का आश्रय ले तो बध हेतु का होता नाश ।
एक दूसरे के विरुद्ध ये एक तिमिर है एक प्रकाश ॥
शीत उष्ण जैसे विरुद्ध है तैसे दोनो सदा विरुद्ध ।
बध हेतु ने मोक्ष हेतु को किया सदा ही से अवरुद्ध ॥
मोक्ष हेतु का ग्रहण करो तुम बध हेतु का कर दो त्याग ।
बध हेतु के त्याग पूर्व तुम सीखो भव तन भोग विराग ।
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥२३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

घातिया घातकी की चाल में न आना तुम ।
घातिया चारों के ही नष्ट का सुयत्न करो ॥

(२४)

मोक्ष हेतु का लक्षण सम्यगग्दर्शनादि त्रयात्मक

स्यात्सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-त्रितयात्मकः ।
मुक्ति-हेतुजिर्नोपज्ञं निर्जरा-संवर-क्रियः ॥२४॥

अर्थ- सर्वज्ञ जिनके द्वारा स्वय का अनुभूत एवं उपदिष्ट मुक्ति हेतु सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ऐसे त्रितयात्मरक है इन तीनो को आत्मसात् किये हुए इन रूप है और निर्जरा तथा सवर उसकी फल व्यापार परक क्रियाये है वह इन दोनो रूप परिणमता हुआ मोक्षफल को फलता है।

२४ ॐ ह्री मुक्तिकारणविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय्र नम ।

शिवधामस्वरूपोऽहम् ।

मुक्ति हेतु त्रतयात्मक का भी बुद्धि पूर्वक कीजे ज्ञान ।
सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान सहित सम्यक् चारित्र महान ॥
पूर्वबद्ध कर्मो के क्षय हित करो निर्जरा का आह्वान ।
नूतन बध रोकने को पहिले सवर का करना ज्ञान ॥
सम्यक् दर्शन आदिक का व्यापार निर्जरा संवर रूप ।
मुक्ति सुफल को प्राप्त कराने मे सक्षम रत्नत्रय भूप ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥२४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२५)

सम्यग्दर्शन का लक्षण

जीवादयो नवाप्यर्था ये यथा जिनभाषिताः ।
ते तथैवेति या श्रद्धा सा सम्यग्दर्शनं स्मृतम् ॥२५॥

अर्थ- जीवादिक जो नौ पदार्थ जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य, पाप नाम के हैं उन्हें जिस प्रकार से सर्वज्ञ जिनने निर्दिष्ट किया है वे उसी प्रकार से स्थित

शुद्ध परिणाम तुम्हें अपने बल से करना है ।
अपनी शक्ति से ही सिद्धत्व का प्रयत्न करो ॥

है अन्यथा रूप से नहीं ऐसी जो श्रद्धा रुचि अथवा प्रतीति है उस का नाम सम्यग्दर्शन है।

२५ ॐ ह्रीं जीवादिनवपदार्थविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

चैतन्यस्वरूपोऽहम् ।

जीवादिक जो नौ पदार्थ है सर्वज्ञो द्वारा निर्दिष्ट ।
जैसे वे हैं वैसा कथन किया है जो वह मुझको इष्ट ॥
नहीं अन्यथा कथन किया है यह मुझको है दृढ श्रद्धान ।
नौ पदार्थ की ज्यो की त्यो श्रद्धा सम्यक् दर्शन पहचान ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥२५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२६)

सम्यग्ज्ञान का लक्षण

प्रमाण नय निक्षेपैर्यो याथात्म्येन निश्चयः ।
जीवादिषु पदार्थेषु सम्यग्ज्ञानं तदिष्यते ॥२६॥

अर्थ- जीवादि पदार्थो मे जो प्रमाणो, नयो और निक्षेपो के द्वारा याथात्म्यरूप से निश्चय होता है उसको सम्यग्ज्ञान माना गया है ।

२६ ॐ ह्रीं प्रमाणनयनिक्षेपविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानाभास्करोऽहम् ।

जिन भाषित जीवादि पदार्थो का सुज्ञान ही सम्यक् ज्ञान ।
नय प्रमाण निक्षेप आदि से ज्यों का त्यो करना सुप्रमाण ॥
द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नैगम संग्रह निश्चय व्यवहार ।
नाम, स्थापना द्रव्य क्षेत्र निक्षेप आदि से करो विचार ॥
जब यथार्थ श्रद्धा होती है तब ही होता सम्यक् ज्ञान ।
निश्चय से तो निज स्वरूप का निर्धारण ही सच्चा ज्ञान ॥

रंग लाओ तो ज्ञान का ही रग लाओ तुम ।
ज्ञान दर्शन सहित आनद बहुत पाओ तुम ॥

अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥२६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२७)

सम्यक् चारित्र का लक्षण

चेतसा वचसा तन्वा कृताऽनुमत-कारितैः ।
पाप क्रियाणां यस्त्यागः सच्चारित्रमुषन्ति तत् ॥२७॥

अर्थ- मन से , वचन से, काय से कृत कारित अनुमोदना के द्वारा जो पाप रूप क्रियाओं का त्याग है उसको सम्यक् चारित्र कहते है।

२७ ॐ ह्री मनवचनकायकृतकारितानुमतरूपपापक्रियारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निरवधस्वरूपोऽहम् ।

मन वच काया कृत कारित अनुमोदन से पापों का त्याग ।
यह सम्यक् चारित्र कथन है नव सुकोटि से करना त्याग ॥
पापो की जो प्रतिपक्षी है वे ही धर्म क्रियाएँ श्रेष्ठ ।
उन्हें ग्रहण करना ही कहलाता तजना पापो को नेष्ठ ॥
धर्म क्रिया का अनुष्ठान ही है सम्यक् चारित व्यवहार ।
निश्चय से तो आत्म ब्रह्म में चर्या है चारित्र उदार ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत. सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥२७॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२८)

मोक्ष हेतु के नयदृष्टि से भेद और उनकी स्थिति

मोक्षहेतुः पुनर्द्वेधा निश्चयाद् व्यवहारतः ।
तत्राऽऽद्यः साध्यरूपः स्याद्द्वितीयस्तस्य साधनम् ॥२८॥

अपनी परिणति का ही श्रंगार तुम करते रहना ।
शुद्ध अनुभव के रस में नित्य ही नहाओ तुम ॥

अर्थ- पूर्वोक्त मुक्ति हेतु मोक्षमार्ग निश्चयनय और व्यवहारनय के भेद से पुन दो प्रकार है जिनमें पहला निश्चय मोक्षमार्ग साध्यरूप है और दूसरा व्यवहार मोक्षमार्ग उस निश्चय मोक्षमार्ग का साधन है ।

२८ ॐ ह्रीं साध्यसाधनरूपमोक्षमार्गविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्विकल्पोऽहम् ।

पूर्वोक्त पहिला है निश्चय शिवपथ साध्य रूप निर्मल ।
दूजा है व्यवहार मोक्षपथ साधन रूप सरल उज्ज्वल ॥
अनुपादेय नहीं है यह व्यवहार सिद्धि पूर्व क्षण तक ।
किन्त मोक्ष सुख पाने के पश्चात् हेय होता विधिवत ॥
पर निर्णय यह करना होगा है व्यवहार स्व पथ में हेय ।
निश्चय भूत पदार्थ आत्मा केवल उपादेय है श्रेय ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥२८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२९)

निश्चय व्यवहार नयों का स्वरूप

अभिन्न कर्तृ कर्मादि-विषयो निश्चयो नयः ।
व्यवहार-नयो भिन्न कर्तृ-कर्मादि-गोचरः ॥२९॥

अर्थ- निश्चय नय अभिन्न कर्तृकर्मादि विषयक होता है उसमें कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण का व्यक्तित्व एक दूसरे से भिन्न नहीं होता । व्यवहार नय भिन्न कर्ता-कर्मादि विषयक है उसमें कर्ता कर्म, करणादि का व्यक्तित्व एक दूसरे से भिन्न होता है यही इन दोनों नयों में मुख्य भेद है।

२९ ॐ ह्रीं भिन्नाभिन्नकर्तृकर्मादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

अखण्डोऽहम् ।

मैल धुल जाएगा कषायों का धीरे धीरे ।
शुद्ध सिद्धत्व गुण से निज को ही सजाओ तुम ॥

निश्चय षट कारक तो निज आत्मा से होता कभी न भिन्न।
कर्त्ता कर्म करण आदिक व्यवहार दृष्टि से होता भिन्न ॥
मोक्षमार्ग के अंग भूत सम्यक् दर्शन आदिक जानो ।
निश्चय अरु व्यवहार जानकर केवल निज आत्मा मानो ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥२९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(३०)

व्यवहार मोक्ष मार्ग

धर्मादि-श्रद्धानं सम्यक्त्वं ज्ञानमधिगमस्तेषाम् ।
चरणं च तपसि चेष्टा व्यवहारान्मुक्तिहेतुरयम् ॥३०॥

अर्थ- धर्म आदिका धर्म, अधर्म, आकाश, काल, जीव और पुद्गल इन छह द्रव्यों का तथा जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इन नौ पदार्थों या तत्त्वों का जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व उन द्रव्यो तथा तत्त्वों का जो अधगिम अधिकृत रूप से अथवा सविशेष रूप से जानना वह सम्यग्ज्ञान और तप मे इच्छा निरोध में जो चर्याप्रवृत्ति वह सम्यक्चारित्र है। इस प्रकार यह व्यवहारनय की दृष्टि से मुक्ति का हेतु है व्यवहार रत्न त्रय रूप मोक्षमार्ग है।

३० ॐ ह्रीं धर्माधर्माकाशादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

एकोऽहम् ।

धर्मादिक छह द्रव्यों का अरु नौ पदार्थ का हो श्रद्धान ।
वह सम्यक् दर्शन कहलाता इनका अधिगम सम्यक् ज्ञान ॥
जो इच्छा निरोध तप है वह है सम्यक् चारित्र महान ।
वह व्यवहार मुक्ति हेतु है रत्नत्रय शिवपथ लो जान ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वतः संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥३०॥

घातिया अरु अघातिया की रज न रह पाए ।
बीन आनद प्रदाता ही नित बजाओ तुम ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(३१)

निश्चय मोक्ष मार्ग

निश्चयनयेन भणितस्त्रिभिरेयिः समाहितो भिक्षुः ।
नोपादत्ते किंचिन्न च मुचंति मोक्षहेतुरसौ ॥३१॥

अर्थ- इन तीनो व्यवहार सम्यग्दर्शनादि से भले प्रकार युक्त जो भिक्षु साधु जब न हो तो कुछ ग्रहण करता है औन न कुछ छोडता है तब वह निश्चयनय से मुक्ति हेतु रूप होता है स्वय मोक्षमार्ग रूप परिणमता है।

३१ ॐ ह्रीं ग्रहणमोचनरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निरालंबोऽहम् ।

इस सम्यक् दर्शन आदिक से युक्त साधु जो होता है ।
ग्रहण त्याग की सभी प्रवृत्ति रहित स्वय ही होता है ॥
रत्नत्रय परिणति अपना आत्मा ही मोक्षमार्ग जानो ।
ग्रहण त्याग की यदि प्रवृत्ति है तो न मोक्षमार्ग मानो ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥३१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(३२)

वही कहते हैं

यो मध्यस्थः पश्यति जानात्यात्मानमात्मनात्मन्यात्मा ।
दृगवगमचरणरूपः स निश्चयान्मुक्तिहेतुरिति हि जिनोक्तिः॥३२॥

अर्थ- जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप आत्मा मध्यस्थ भाव को प्राप्त हुआ आत्मा को आत्मा के द्वारा आत्मा मे देखता और जानता है वह निश्चयनय से मुक्ति का हेतु है ऐसी सर्वज्ञ जिनकी उक्ति-वाणी है ।

मार्ग में यदि मिलें कटक तो उन्हें तुम दुबल देना ।
बिना केबट के ही अब मुक्ति भवन जाओ तुम ॥

३२ ॐ ह्री निजध्रुवात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

टङ्कोत्कीर्णोऽहम् ।

दर्शन ज्ञान चरित्र रूप आत्मा मध्यस्थ भाव आने ।
आत्मा को आत्मा के द्वारा आत्मा में देखे जाने ॥
निश्चय से तो ज्ञाता दृष्टा क्रिया आत्मा से ना भिन्न ।
कर्त्ता कर्म करण आदिक निज आत्मा से हैं सदा अभिन्न ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥३२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(३३)

द्विविध मोक्षमार्ग ध्यानलभ्य होने से ध्यानाभ्यास की प्रेरणा

स च मुक्तिहेतुरिद्धो ध्याने यस्मादवाप्यते द्विविदोऽपि ।
तस्मादभ्यस्यन्तु ध्यानं सुधियः सदाऽप्यपास्याऽऽलस्यम् ॥३३॥

अर्थ- यत निश्चय और व्यवहार रूप दोनो प्रकार का निर्दोष मुक्ति हेतु ध्यान की साधना मे प्राप्त होता है अत हे सुधीजनो ! सदा ही आलस्य का त्याग कर ध्यान का अभ्यास करो ।

३३ ॐ ह्री आलस्यरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निरालसस्वरूपोऽहम् ।

निश्चय अरु व्यवहार रूप दोनों प्रकार का जो निर्दोष ।
मुक्ति हेतु है ध्यान साधना मे मिलता है यह बिन दोष ॥
अत सदा ही तज आलस्य ध्यान का ही अभ्यास करो ।
सुधी जनो तुम निरालस्य हो ध्यान करो विश्वास करो ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वतः सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥३३॥

काया की गुजरियाने रात दिन लूटा हैं ।
मूढ यह चेतन भी अपने से रूठा है ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(३४)

ध्यान के भेद और उनकी उपादेयता

आर्त्त रौद्रं च दुर्ध्यानं वर्जनीयमिदं सदा ।
धर्म्यं शुक्लं च सद्ध्यान मुपादेयं मुमुक्षुभिः ॥३४॥

अर्थ- आर्त्त ध्यान दुर्ध्यान है रौद्र ध्यान भी दुर्ध्यान है और यह प्रत्येक दुर्ध्यान मुमुक्षुओं के द्वारा सदा त्यागने योग्य है । धर्म्यध्यान सद्ध्यान है, शुक्ल ध्यान भी सद्ध्यान है और यह प्रत्येक सद्ध्यान मुमुक्षुओ के द्वार सदा ग्रहण किये जाने के योग्य है ।

३४ ॐ ह्रीं दुर्ध्यनरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शुद्धोऽहम् ।

आर्त्त ध्यान दुर्ध्यान रूप है रौद्र ध्यान है ही कुध्यान ।
मुमुक्षुओ को सदा त्यागने योग्य बताया है दुर्ध्यान ॥
धर्म ध्यान सद्ध्यान रूप है शुक्ल ध्यान ही है सद्ध्यान ।
मुमुक्षुओ को सदा ग्रहण के योग्य कहे हैं ये सद्ध्यान ॥
इष्ट वियोग अनिष्ट योग वेदना निदान आर्त्त है चार ।
हिंसा मृषा चौर्य परिग्रह मे आनंद रौद्र है चार ॥
अविरत देश विरत प्रमत्त सयत तक आर्त्त ध्यान होता ।
यह दुखदायी सदा जानना त्याग योग्य ही यह होता ॥
अविरत देश विरत होता है रौद्र ध्यान अति दुख की खान।
इन दुर्ध्यानो से जो बचते वे ही करते निज कल्याण ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥३४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(३५)

शुक्ल ध्यान के ध्याता

मोह मदिरा पीते तो बीता है काल बहुत ।
इसीलिए चेतन का कस बल सब टूटा हैं ॥

वज्रसंहननोपेता: पूर्व-श्रुत-समन्विता: ।
दध्यु: शुक्लमिहाऽतीता: श्रेण्योरारोहणक्षमा: ॥३५॥

अर्थ- वज्रसंहनन के धारक पूर्वनामक श्रुतज्ञान से संयुक्त और दोनों उपशम तथा क्षपक श्रेणियों के आरोहण में समर्थ एसे अतीत महापुरुषों ने इस भूमंडल पर शुक्ल ध्यान को धयाया है।

३५ ॐ ह्रीं वज्रसहननरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अनंतशक्तिस्वरूपोऽहम् ।

वज्र सहनन पूर्वागम वर्णित श्रुत ज्ञान अगर है व्याप्त ।
उपशम तथा क्षपक श्रेणी में चढने की क्षमता हो प्राप्त ॥
यही ध्यान सामग्री होती शुक्ल ध्यान के ध्याता की ।
निश्चल रत्नत्रय की महिमा होती है उस ज्ञाता की ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत. संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥३५॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(३६)

धर्म्यध्यान के कथन की सहेतुक प्रतिज्ञा

तादृक्सामग्र्यभावे तु ध्यातुं शुक्लमिहाक्षमान् ।
ऐदंयुगीनानुद्दिश्य धर्म्यध्यानं प्रचक्ष्महे ॥३६॥

अर्थ- इस क्षेत्र में उस प्रकार की वज्र संहननादि सामग्री का अभाव होने के कारण जो शुक्ल ध्यान को ध्याने में असमर्थ है उन इस युग के साधकों को लक्ष्य लेकर मैं धर्म्यध्यान का कथन करूंगा ।

३६ ॐ ह्रीं धर्म्यशुक्लध्यानविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

ज्ञानचंद्रोऽहम् ।

क्षेत्र वज्र संहनन आदि सामग्री का है आज अभाव ।
शुक्ल ध्यान में जो असमर्थ किन्तु लक्ष्य में आत्म स्वभाव॥

जब ये अपने से ही परिचय महान करता है ।
तभी मिथ्यात्व का घट पूर्णतया फूटा है ॥

उनके ही कल्याण हेतु मै धर्म ध्यान कथनी करता ।
शुक्ल ध्यान होता न जिन्हें मै उनके हित वर्णन करता ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥३६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(३७)

अष्टागयोग और उसका संक्षिप्त रूप

ध्याता ध्यानं फलं ध्येयं यस्य यत्र यदा यथा ।
इत्येतदत्र बोद्धव्यं ध्यातुकामेन योगिना ॥३७॥

अर्थ- जो योगी ध्यान करने की इच्छा रखता है उसे ध्याता, ध्येय, ध्यान फल जिसके जहा जब और जैसे यह सब इस धर्म्यध्यान के प्रकरण मे जानना चाहिए ।

३७ ॐ ह्रीं अष्टागयोगविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सहजचित्स्वरूपोऽहम् ।

ध्याता ध्येय ध्यान ध्यान फल जब जैसे हो जहाँ जिसे ।
जिन्हे ध्यान इच्छा उर मे हो धर्म ध्यान का कथन उसे ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥३७॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(३८)

वही कहते है

गुप्तेन्द्रिय-मना ध्याता ध्येयं वस्तु यथास्थितम् ।
एकाग्रचिन्तनं ध्यानं निर्जरा संवरौ फलम् ॥३८॥

अर्थ- इन्द्रियो तथा मनोयोग का निग्रह करने वाला उन्हें अपने अधीन रखने वाला ध्याता कहलाता है यथावास्थित वस्तु ध्येय कही जाती है एकाग्र चिन्तन का नाम ध्यान है और निर्जरा तथा संवर दोनों फल है ।

अविरति हार गई प्रमाद भी हार गया ।
कषायो का देखो टूट गया खूटा है ॥

३८ ॐ ह्री इन्द्रियमनोनिग्रहविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

अभेदचित्स्वरूपोऽहम् ।

इन्द्रिय मनोयोग का निग्रह करने वाला है ध्याता ।
यथा अवस्थित वस्तु ध्येय चिन्तन एकाग्र ध्यान ज्ञाता ॥
धर्म ध्यान फल तो निर्जरा तथा संवर दोनो जानो ।
निश्चय से तो ध्यान ध्येय ध्याता अविकल्प रूप मानो ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥३८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(३९)

वही कहते है

**देश:कालश्च सोऽन्वेष्य: सा चाऽवस्थाऽनुगम्यताम् ।
यदा यत्र यथा ध्यानमपविघ्नं प्रसिद्धयति ॥३९॥**

अर्थ- देश और काल वह अन्वेषणीय है और अवस्था वह अनुसरणीय है जहाँ जब और जैसे ध्यान निर्विघ्न सिद्ध होता है।

३९ ॐ ह्रीं देशकालविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अव्याबाधस्वरूपोऽहम् ।

देश काल अन्वेषणीय है ध्यान अवस्था अनुसरणीय ।
जब जैसे निर्विघ्न ध्यान की निधि स्व बने वह आदरणीय॥
धर्म ध्यान का प्रकरण समझे तथा ध्यान का समझे अर्थ ।
नहीं समझ पाए तो समझो सर्व ध्यान श्रम होगा व्यर्थ ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत. संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥३९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

अपने स्वरूप के ही ध्यान में मग्न रहा ।
चारों ही दिशा देखो ज्ञान बेल बूटा है ॥

(४०)

वही कहते है

इति संक्षेपतो ग्राक्षणमष्टांगं योग साधनम् ।
विवरीतुमद: किंचिदुच्यमानं निशम्यताम् ॥४०॥

अर्थ- इस प्रकार सक्षेप से अष्ट अगरूप योग साधन ग्रहण किये जाने के योग्य है। इसका विवरण करने के लिए यो कुछ आगे कहा जा रहा है उसे सुनो ।

४० ॐ ह्रीं योगसाधनविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

निर्योगस्वरूपोऽहम् ।

ग्रहण योग्य है अष्ट अंग युत यही योग साधन तत्काल ।
ध्याता ध्येय ध्यान ध्यान फल तथा अवस्था देशरु काल ॥
तथा ध्यान स्वामी हो निज हित रुचिकर बलशाली गुणवान।
धर्म ध्यान के योग्य वही है उसको ही होता है ध्यान ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥४०॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(४१)

ध्याता का विशेष लक्षण

तत्राऽऽसन्नीभवन्मुक्ति किंचिदासाद्यकारणम् ।
विरक्त: कामभोगेभ्यस्त्यक्त-सर्वपरिग्रह: ॥४१॥

अर्थ- उच्चयमान विवरण में धर्म्य ध्यान का ध्याता इस प्रकार के लक्षणों वाला माना गया है जिसकी मुक्ति निकट आ रही हो जो कोई भी कारण पाकर कामसेवा तथा अन्य इन्द्रियों के भोगों से विरक्त हो गया हो जिसने समस्त परिग्रह का त्याग किया हो ।

४१ ॐ ह्रीं कामभोगरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निष्परिग्रहस्वरूपोऽहम् ।

काया की गुजरिया भी छूट गई तत्काल ।
सिद्धपद मिलता है कर्म बंध टूटा है ॥

इन्द्रिय भोग विरक्त काम से उदासीन जो भव्यासन्न ।
सर्व परिग्रह का त्यागी वैराग्य भाव से हो सम्पन्न ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥४१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(४२)

वही कहते है

अभ्येत्य सम्यगाचार्य दीक्षां जैनेश्वरीं श्रितः ।
तपः-संयम-सम्पन्न प्रमादरहिताऽऽशयः ॥४२॥

अर्थ- जिसने आचार्य के पास जाकर भले-प्रकार जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण की हो--जो जैन धर्म मे दीक्षित होकर मुनि बना हो-जो तप और सयम से सम्पन्न हो, जिसका आशय प्रमाद रहित हो ।

४२ ॐ ह्रीं प्रमादरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निष्प्रमादस्वरूपोऽहम् ।

आचार्यो से जिन दीक्षा ले तप सयम से हो सम्पन्न ।
आशय सदा प्रमाद रहित है मन से होते नहीं विपन्न ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥४२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(४३)

वही कहते है

सम्यग्निर्णीत-जीवादि-ध्येयवस्तु-व्यवस्थितिः ।
आर्त्त-रौद्र-परित्यागाल्लब्ध चित्त प्रसत्तिकः ॥४३॥

अर्थ- जिसने जीवादि ध्ये-वस्तु को व्यवस्थिति को भले प्रकार निर्णीत कर लिया हो, आर्त्त और रौद्र-ध्यानों के परित्याग से जिसने चित्त की प्रसन्नता प्राप्त की हो ।

कीर्ति कामना से जो होते मुक्त वही शिवपथ पाते ।
सेवा भावी जीवन जीते वे ही पूर्ण सौख्य लाते ॥

४३ ॐ ह्रीं चित्तप्रसन्नताविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

आत्माल्हादस्वरूपोऽहम् ।

जीवादिक निज ध्येय वस्तु का सम्यक् निर्णय है उत्तम ।
आर्त्तरौद्र दुर्ध्यान तज दिए हो प्रसन्न निज थल उद्यम ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥४३॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(४४)

वही कहते है

मुक्त लोकद्वयाऽपेक्षः सोढाऽशेष-परीषहः ।
अनुष्ठित-क्रियायोगो ध्यान-योगे-कृतोद्यमः ॥४४॥

अर्थ- जो इस लोक और परलोक दोनो की अपेक्षा से रहित हो, जिसने सभी परीषहों को सहन किया हो, जो क्रियायो का अनुष्ठान किये हुए हो- सिद्धभक्ति आदि क्रियाओ के अनुष्ठान मे तत्पर हो , ध्यान योग मे जिसने उद्यम किया हो ।

४४ ॐ ह्रीं परीषहादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अनशनस्वरूपोऽहम् ।

लोक और परलोक सुखो की नही अपेक्षा है मन मे ।
सभी परीषह सहन कर रहे क्रिया योग श्रम क्षण क्षण मे ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥४४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(४५)

वही कहते है.

महासत्त्वः परित्यक्त-दुर्लेश्याऽशुभभावनः ।
इतीदृग्लक्षणो ध्याता धर्म्य-ध्यानस्य सम्मतः ॥४५॥

जिनका जीवन मनन अध्ययन चिन्तन में ही बीतेगा ।
उनका ही अन्तर्मन निर्मल होगा दुख से रीतेगा ॥

अर्थ- ध्यान लगाने का कुछ अभ्यास किया हो- जो महासामर्थ्यवान् हो और जिसने अशुभ लेश्याओं तथा बुरी भावनाओ का परित्याग किया हो ।

४५ ॐ ह्री लेश्यारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

निर्लेश्यास्वरूपोऽहम् ।

अशुभ लेश्या बुरी भावनाओ का त्याग समुज्ज्वल है ।
है सामर्थ्यवान ध्यान मे आत्म गुणों का ही बल है ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥४५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(४६)

धर्म्य ध्यान के स्वामी

अप्रमत: प्रमत्तश्च सद्दृष्टिर्देशसंयत: ।
धर्म्यध्यानस्य चत्वारस्तत्त्वार्थे स्वामिन: स्मृता: ॥४६॥

अर्थ- अप्रमत्त प्रमत्त देशसयमी और सम्यग्दृष्टि ऐसे चार गुणस्थानवर्ती जीव तत्त्वार्थ में धर्म्य ध्यान के स्वामी अधिकारी स्मरण किये गये अथवा जैनागम के अनुसार माने गये है ।

४६ ॐ ह्री प्रमत्ताप्रमत्तादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञायकोऽहम् ।

सप्तम षष्टम पचम चौथे गुणस्थान वर्ती जो जीव ।
धर्म ध्यान के स्वामी अधिकारी है ऐसे जीव सदीव ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥४६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(४७)

धर्म ध्यान के दो भेद और उनके स्वामी

सौम्य यशस्वी श्रेयस्कर सन्मार्ग जिन्हें होता है प्राप्त ।
वे जन सेवा में रत हो पा ही लेते हैं निज पद आप्त ॥

मुख्योपचार-भेदेन धर्म्यध्यानमिह द्विधा ।
अप्रमत्तेषु तन्मुख्यमितरेष्वौपचारिकम् ॥४७॥

अर्थ- ध्यान स्वामी के उक्त निर्देश में धर्म्य ध्यान मुख्य और उपचार के भेद से दो प्रकार का है । अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती जीवो मे जो ध्यान होता है वह मुख्य धर्म्यध्यान है और शेष छठे, पॉचवे और चौथे गुणस्थानवर्ती जीवो मे जो ध्यान बनता है वह सब औपचारिक (गौण) धर्म्यध्यान है।

४७ ॐ ह्रीं मुख्योपचाररूपधर्म्यध्यानविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शुद्धचिद्घनोऽहम् ।

मुख्य और उपचार भेद से धर्म ध्यान के हैं दो भेद ।
सप्तम अप्रमत्त मे होता धर्म ध्यान यह मुख्य अभेद ॥
षष्टम पचम चतुर्थ मे जो धर्म ध्यान वह है उपचार ।
अप्रमत्त सप्तम को जो फल वह न शेष को किसी प्रकार ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥४७॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(४८)

सामग्री के भेद से ध्याता और ध्यान के भेद

द्रव्य-क्षेत्रादि-सामग्री ध्यानोत्पत्तौ यतस्त्रिधा ।
ध्यातारस्त्रिविधास्तस्मात्तेषां ध्यानान्यपि त्रिधा ॥४८॥

ध्यान की उत्पत्ति मे कारणीभूत द्रव्य क्षेत्र काल और भाव रूप सामग्री चूँकि तीन प्रकार की है उत्तम मध्यम और जघन्य इसलिए ध्याता भी तीन प्रकार के हैं और उनके ध्यान भी तीन प्रकार के हैं।

४८ ॐ ह्रीं ध्यानोत्पत्तिकारणद्रव्यक्षेत्रादिसामग्रीविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

आनंदघनोऽहम् ।

आध्यात्मिकता बिना जीव का जीवन हो जाता है व्यर्थ।
आध्यात्मिकता जब होती है तभी सिद्ध होते सब अर्थ ॥

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव सामग्री भी है तीन प्रकार ।
उत्तम मध्यम जघन्य तीनों ध्यानोत्पत्ति मूल आधार ॥
इस प्रकार से ध्याता भी है तीन प्रकार क्रमिक जानो ।
तथा ध्यान भी तीन भाति का जिन आगम कहता मानो ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥४८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(४९)

वही कहते है

सामग्रीतः प्रकृष्टाया ध्यातरि ध्यानमुत्तमम् ।
स्याज्जघन्यं जघन्याया मध्यमायास्तु मध्यमम् ॥४९॥

अर्थ ध्याता में उत्तम सामग्री के योग से उत्तम ध्यान जघन्य सामग्री के योग से जघन्य ध्यान और मध्यम सामग्री के योग से मध्यम ध्यान बनता है ।

४९ ॐ ह्री प्रकृष्टादिध्यानसामग्रीविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।
मंगलस्वरूपोऽहम् ।

ध्याता को उत्तम सामग्री हो तो होता उत्तम ध्यान ।
मध्यम सामग्री मिलती है तब होता है मध्यम ध्यान ॥
जघन्य सामग्री होती है तब होता है जघन्य ध्यान ।
इस प्रकार से ध्याता करता रहता है अपना कल्याण ॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत संयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥४९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(५०)

विकलश्रुत ज्ञानी भी धर्म्य ध्यान का ध्याता

साधु स्वभावी प्राणी होते दृष्टि पारदर्शी से युक्त ।
आआत्मा को ध्याते हैं अपनी हो जाते भव दुख से मुक्त॥

श्रेतन विकलेनाऽपि ध्याता स्मान्मनसा स्थिरः ।
प्रबुद्धधीरधःश्रेण्योर्धर्म्य-ध्यानस्य सुश्रुतः ॥५०॥

अर्थ- विकल (अपूर्ण) श्रुत ज्ञान के द्वारा भी धर्म्यध्यान का ध्याता वह साधक होता है जो कि मन से स्थिर हो। उपशमक और क्षपक दोनो श्रेणियो के नीचे धर्म्य ध्यान का ध्याता प्रकर्षरूप से विकसित बुद्धि वाला होना शास्त्र सम्मत है ।

५० ॐ ह्री विकलश्रुतज्ञानरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

परिपूर्णज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

जो प्रबुद्ध बुद्धि होते है वे विशेष श्रुत ज्ञानी है ।
धर्म ध्यान के वे ध्याता है उद्यमशील सुध्यानी है ॥
इनको धर्म ध्यान होता है यह आगम प्रसिद्ध है बात ।
किन्तु विकल श्रुत अल्प ज्ञानि भी धर्म ध्यान के जानो पात्र॥
अपने पर अनुशासन हो तो स्वत सयमित होता जीव ।
समकित का वैभव पाता है देह जानता पृथक अजीव ॥५०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(५१)

धर्म के लक्षण भेद से धर्म्य ध्यान का प्ररूपण

सददृष्टि-ज्ञान-वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
तस्माद्यदनपेतं हि धर्म्यं तद्ध्यानमभ्यधुः ॥५१॥

अर्थ- धर्म के ईश्वरो तीर्थंकरो ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को धर्म कहा है उस धर्म चिन्तन से युक्त जो ध्यान है वह निश्चित रूप से धर्म्य ध्यान कहा गया है ।

५१ ॐ ह्री निजधर्मात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

आत्मधर्मस्वरूपोऽहम् ।

तीर्थंकर ने सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित्र बताया धर्म ।
सतत धर्म चिन्तन सुयुक्त को धर्म ध्यान है जानो मर्म ॥

प्रज्ञाकी जो पृष्ठभूमि है स्वाध्याय से है निर्मित ।
स्वाध्याय की गंगोत्री ही शिवसुख दाता है निश्चित ॥

हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥५१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(५२)

वही कहते है

आत्मनः परिणामो यो मोह क्षोभ विवर्जितः ।
स च धर्मोऽनपेतं यत्तस्माद्धर्म्यमित्यपि ॥५२॥

अर्थ- आत्मा का जो परिणाम मोह और क्षोभ से विहीन है वह धर्म है उस धर्म से युक्त जो ध्यान है वह भी धर्म्य ध्यान कहा गया है ।

५२ ॐ ह्री मोहक्षोभपरिणामरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अक्षुब्धोऽहम् ।

मोह क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम वही हे धर्म ।
इसी धर्म से जो सुयुक्त है वही ध्यान है उत्तम धर्म ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥५२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(५३)

वही कहते है

शून्यीभवदिदं विश्वं स्वरूपेण धृतं यतः ।
तस्माद्वस्तुस्वरूपं हि प्राहुर्धर्मं महर्षयः ॥५३॥

अर्थ- यह विश्व दृश्यमान वस्तु समूह रूप जगत प्रतिक्षण पर्यायों के विनाश रूप शून्यता अथवा अभाव को प्राप्त होता हुआ चूँकि स्वरूप के द्वारा धृत है पृथक् पृथक् वस्तु स्वभाव के अस्तित्व को लिए हुए अवस्थित है वस्तु के स्वरूप का कभी अभाव नहीं होता इसलिए वस्तु स्वरूप को ही महर्षियों ने धर्म कहा है ।

५३. ॐ ह्रीं सज्ज्ञानात्मतत्त्वस्वरूपाय नमः ।

सच्चित्स्वरूपोऽहम् ।

जीवन के अविरल प्रवाह मे जो नूतन प्रयोग करते ।
वे ही जीवन सार्थक करते अपना भवदुख भी हरते ॥

प्रतिक्षण पर्यायो का होता है विनाश यह निश्चित है ।
वस्तु स्वरूप अभाव न होता वस्तु स्वभाव व्यवस्थित है ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥५३॥

ॐ ह्री श्री तत्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(५४)

वही कहते है

ततोऽनपेतं यज्ज्ञानं तद्धर्म्यध्यानमिष्यते ।
धर्मो हि वस्तुयाथात्म्यमित्यार्षेऽप्यभिधानतः ॥५४॥

अर्थ- उस वस्तु स्वरूप धर्म से युक्त जो ज्ञान है वह धर्म्यध्यान माना जाता है आर्ष मे भगवज्जिनसेनाचार्यपणीत महापुराण मे भी धर्मो हि वस्तुयाथात्म्यम् ऐसा विधान पाया जाता है जो कि वस्तु के याथात्म्य को यथावस्थित उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक स्वरूप को धर्म प्रतिपादित करता है।

५४ ॐ ह्री शाश्वतचिदात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अक्षयचैतन्यस्वरूपोऽहम् ।

वस्तु स्वभाव धर्म से जो युत वही ज्ञान है धर्म ध्यान ।
व्यय उत्पाद ध्रौव्यात्मक वस्तु त्रिकाल यथात्म्य महान ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥५४॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(५५)

वही कहते है

यश्चोत्तमक्षमादिः स्याद्धर्मो दशतयः परः ।
ततोऽनपेत यद्ध्यानं तद्वा धर्म्यमितीरितम् ॥५५॥

अर्थ- अथवा उत्तमक्षमादि रूप दश प्रकार का जो उत्कृष्ट धर्म है, उससे जो ध्यान युक्त

आत्म ज्योति से कर्मो का पर्वत भी जय हो जाता है ।
आत्म ज्ञान का दिव्य प्रकाश स्वयं शिवमय हो जाता है॥

है वह भी धर्म्य ध्यान है ऐसा कहा गया है ।

५५ ॐ ह्रीं क्षमादिधर्मयुक्तात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निष्क्रोधस्वरूपोऽहम् ।

उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव शौच सत्य सयम तप त्याग ।
आकिचन ब्रह्मचर्य धर्म दश युक्त हृदय मे पूर्ण विराग ॥
उत्तम धर्म ध्यान है यह भी जो करता सबका कल्याण ।
दश धर्मो का स्वरूप चिन्तन रूप ध्यान है धर्म ध्यान ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥५५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(५६)

ध्यान का लक्षण और उसका फल

एकाग्र चिन्ता-रोधो यः परिस्पन्देन वर्जितः ।
तद्ध्यान निर्जरा-हेतुः संवरस्य च कारणम् ॥५६॥

अर्थ- परिस्पन्द से रहित जो एकाग्र चिन्ता का निरोध है एक अवलम्बन रूप विषय मे चिन्ता का स्थिर करना है । उसका नाम ध्यान है और वह निर्जरा तथा सवर का कारण है ।

५६ ॐ ह्री परिस्पन्दरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अचलज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

परिस्पद से रहित सतत एकाग्र करो चिन्ता सुनिरोध ।
वही ध्यान निर्जरा सुसवर का कारण आस्रव अवरोध ॥
इस एकाग्र ध्यान से ही निर्जरा तथा सवर होता ।
दोनों ही शक्तियां निहित है ऐसा ध्यान श्रेष्ठ होता ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥५६॥

जब भी खाओ ज्ञान मिठाई वह मीठी ही लगती है ।
आध्यात्मिक सम्मान करो जब सारी कटुता भगती है ॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(५७)

ध्यान के लक्षण मे प्रयुक्त शब्दो का वाच्यार्थ

एकं प्रधानमित्याहुरग्रमालम्बनं मुखम् ।
चिन्ता स्मृतिर्निरोधस्तु तस्यातत्रैव वर्तनम् ॥५७॥

अर्थ एक प्रधान को और अग्र आलम्बन को तथा मुख को कहते है। चिन्ता स्मृति का नाम है और निरोध उस चिन्ता का उसी एकाग्र विषय मे वर्तन का नाम है ।

५७ ॐ ह्री परमदेवस्वरूपात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजभगवत्स्वरूपोऽहम् ।

एक अग्र मुख हो स्मृति का निरोध ही उत्तम वर्त्तन ।
यही ध्यान का लक्षण जानो यही ध्यान है उत्तम धन ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥५७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(५८)

वही कहते है

द्रव्य पर्याययोर्मध्ये प्राधान्येन यदर्पितम् ।
तत्र चिन्ता-निरोधो यस्तद्ध्यान वभणुर्जिना: ॥५८॥

अर्थ द्रव्य और पर्याय के मध्य में प्रधानता से जिसे विवक्षित किया जाय उसमे चिन्ता का जो निरोध है उसे अन्यत्र न जाने देना है उसको सर्वज्ञ भगवन्तो ने ध्यान कहा है।

५८ ॐ ह्री चिन्तानिरोधविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

पवित्रोऽहम् ।

द्रव्य तथा पर्याय मध्य मे जिसे विविक्षित तुम कर लो ।
उसमे चिन्ता का निरोध कर उत्तम ध्यान हृदय धर लो ॥

कर्म बंध की जड़ पर जब भी प्राणी करता है आघात ।
पाप पुण्य दोनों क्षय होते होता मगलमयी प्रभात ।

हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥५८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(५९)

ध्यान लक्षण में एकाग्र ग्रहण की दृष्टि

एकाग्र ग्रहणं चाऽत्र वैयग्रय-विनिवृत्तये ।
व्यग्रं हि ज्ञानमंव स्याद् ध्यानमेकाग्रमुच्यते ॥५९॥

अर्थ- इस ध्यान लक्षण मे जो एकाग्र का ग्रहण है वह व्यगता की विनिवृत्ति के लिए ह। ज्ञान ही वस्तुत व्यग्र होता है, ध्यान नही। ध्यान को एकाग्र कहा जाता है।

५९ ॐ ह्री व्यग्रतारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजात्मतत्त्वस्वरूपोऽहम् ।

ज्ञान व्यग्र होता है लेकिन ध्यान व्यग्र होता न कभी ।
सकल व्यग्रता की निवृत्ति ही है एकाग्र ध्यान दृढ ही ॥
नही ज्ञान से भिन्न ध्यान है जब एकाग्र ज्ञान होता ।
निश्चल अग्नि शिखर समान अवभासमान ध्यान होता ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥५९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(६०)

एकाग्र चिन्तानिरोधरूप ध्यान कब बनता है और उसके नामान्तर

प्रत्याहत्य यदा चिन्तां नानाऽऽलम्बनवर्तिनीम् ।
एकालम्बन एवैनां निरुणद्धि विशुद्धधीः ॥६०॥

अर्थ- जब विशुद्ध बुद्धि का धारक योगी नाना आलम्बनो मे वर्तने वाली चिन्ता को खींचकर उसे एक आलम्बन मे ही स्थिर करता है अन्यत्र नहीं जाने देता ।

सब प्रकार सुविधा पाना है तो निष्ठा से काम करो ।
अपना शाश्वत सुख पाना है तो निज मे विश्राम करो ॥

६० ॐ ह्री परालम्बनरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

स्वावलबनस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध बुद्धि का धारक योगी नाना अवलबन को तज ।
चिन्ता जयकर मात्र एक आलबन मे थिर हो निज भज ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥६०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(६१)

वही कहते है

तदाऽस्य योगिनो योगश्चिन्तैकाग्रनिरोधनम् ।
प्रसख्यानं समाधिः स्याद्ध्यान स्वेष्ट-फल-प्रदम् ॥६१॥

अर्थ तब उस योगी के चिन्ता के एकाग्र निरोधन नाम का योग होता है जिसे प्रसख्यान, समाधि और ध्यान भी कहते है और वह अपने इष्ट फल का प्रदान करने वाला होता है।

६१ ॐ ह्री प्रसख्यानयोगविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

समतास्वरूपोऽहम् ।

तब उस योगी की चिन्ता का ही निरोध एकाग्र सुयोग ।
उसी योग को प्रसख्यान कहते समाधि या ध्यान सुयोग ॥
ऐसा ध्यान इष्ट फल दाता मुख्य निर्जरा सवर रूप ।
लौकिक फल का भी दाता है निज पद दाता शुद्ध स्वरूप॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥६१॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(६२)

अगर का निरुक्तयर्थ

एकम के दिन करो चिन्तवन अपना एकी भाव विचार ।
करो दूज का सतत चिन्तवन राग द्वेष दुख के आगार॥

अथवाऽङ्गति जानातीत्यग्रमात्मा निरुक्तितः ।
तत्त्वेषु चाऽग्र-गण्यत्वादसावग्रमिति स्मृतः ॥६२॥

अर्थ- अथवा अगति जानाति इति अग्र इस निरुक्ति से अग्र आत्मा का नाम है जो कि जानता है और वह आत्मा तत्त्वो मे अग्रगण्य होने से भी अग्र रूप से स्मरण किया गया है।

६२ ॐ ह्री महच्चिदात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

जीवत्वशक्तिसंपन्नोऽहम् ।

अग्र नाम आत्मा का ही है जो ज्ञाता वह है आत्मा ।
सात तत्त्व नौ तत्त्वो की गणना मे पहिला जीवात्मा ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥६२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(६३)

वही कहते है

द्रव्यार्थिक-नयादेकः केवलो वा तथोदितः ।
अन्तः-करणमवृत्तिस्तु चिन्तारोधो नियंत्रणा ॥६३

अर्थ- द्रव्यार्थिक नय से एक शब्द केवल अथवा तथोदित (शुद्ध) का वाचक है चिन्ता अन्तकरण की वृत्ति को कहते है और रोष नाम नियन्त्रण का है ।

६३ ॐ ह्री परनिरपेक्षात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

स्वतंत्रोऽहम् ।

एक शब्द वाचक है केवल तथा शुद्ध इस को जानो ।
चित्त वृत्ति पर करो नियत्रणध्यान उसे ही तुम मानो ॥
निश्चयनय से एक शब्द का वाचक भाली भाति लो जान।
उसे जान एकाग्र भाव से शुद्ध आत्मा को लो मान ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥६३॥

तथातीज को सावधान हो मन वच काया योग संवार ।
तथा चौथ को तो विचार हो चार कषायो का परिहार ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(६४)

चिन्तानिरोध का वाच्यान्तर

अभावो वा निरोधः स्यात्स च चिन्तान्तर व्ययः ।
एकचिन्तात्मको यद्वा स्वसंविचिच्चन्तयोज्झिता ॥६४॥

अर्थ अथवा अभाव का नाम निरोध है और वह दूसरी चिन्ता के विनाश रूप एकचिन्तात्मक है अथवाा चिन्ता से रहित स्वसविति रूप ह ।

६४ ॐ ह्रीं अन्यचिन्तारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निराकुलस्वरूपोऽहम् ।

चिन्ता नाश निरोध जानना जो अभाव कहलाता है ।
यही एक हे अचिन्तात्मक चिन्ता रहित कहाता हे ॥
चिन्ता रहित स्वसपित्ति ही रूप स्वसवेदन जानो ।
सब चिन्ताओ का अभाव ही लक्षण ध्यान सदा मानो ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥६४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(६५)

वही कहते है

तत्राऽऽत्मन्यासहाये यच्चिन्तायाः स्यान्निरोधनम् ।
तद्ध्यानं तदभावो वा स्वसंयित्ति मयश्च सः ॥६५॥

अर्थ- किसी की भी सहायता से रहित उस केवल शुद्ध आत्मामें जो चिन्ता का नियन्त्रण हे उसका नाम ध्यान है अथवा उस आत्मा मे चिन्ता के अभाव का नाम ध्यान है और वह स्वसवेदन रूप है ।

६५ ॐ ह्रीं परायतत्वरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

स्वायत्तस्वरूपोऽहम् ।

तथा पचमी पंचमभाव पारिणामिक का ही हो आधार ।
छठ को सोचो छह द्रव्यों में आत्म द्रव्य ही उत्तम सार ॥

बिना किसी की सहायता के केवल शुद्धात्मा का ध्यान ।
चिन्ताओं पर हुआ नियंत्रण यही ध्यान की है पहचान ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥६५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(६६)

कौन सा श्रुतज्ञान ध्यान है और ध्यान का उत्कृष्ट काल

श्रुतज्ञानमुदासीनं यथार्थमतिनिश्चलम् ।
स्वर्गाऽपवर्ग-फलद ध्यानमाऽऽ-ऽन्तर्मुहूतत: ॥६६॥

अर्थ- जो श्रुत ज्ञान उदासीन राग द्वेष से रहित उपेक्षामय यथार्थ और अत्यन्त स्थिर है वह ध्यान है अन्तमुहूर्त पर्यन्त रहता और स्वर्ग तथा मोक्ष फल का दाता है।

६६ ॐ ह्री स्वर्गापवर्गफलापेक्षारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

विरागस्वरूपोऽहम् ।

उदासीन श्रुतज्ञान राग द्वेषो से रहित यथार्थ सुथिर ।
रहता है अन्तमुहूर्त्त तक स्वर्ग मुक्ति दाता सुखकर ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥६६॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(६७)

ध्यान के निरुतक्त्यर्थ

ध्यायते येन तद्ध्यानं यो ध्यायति स एव वा ।
यत्र वा ध्यायते यद्वा ध्यातिर्वा ध्यानमिष्यते ॥६७॥

अर्थ- जिसके द्वारा ध्यान किया जाता है वह ध्यान है अथवा जो ध्यान करता है वही ध्यान है जिसमें ध्यान किया जाता है वह ध्यान है अथवा ध्याति का ध्येय वस्तु मे परमस्थिर बुद्धि का नाम भी ध्यान है ।

और सप्तमी सातो तत्त्वों की श्रद्धा हो हृदय अपार ।
तथा अष्टमी अष्टमूल गुण पालन करना व्रत आधार ॥

६७ ॐ ह्री ध्यानविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम· ।

एकत्वविभक्तस्वरूपोऽहम् ।

जिसके द्वारा ध्यान किया जाता वह कहलाता है ध्यान ।
जो करता ह ध्यान वही तो कर्त्ता कहलाता है ध्यान ॥
जिसमे ध्यान किया जाता है उसको ही कहते है ध्यान ।
ध्येय वस्तु मे परम सुस्थिरता बुद्धिनाम भी जानो ध्यान ॥
यही करण है यह कर्त्ता है यह अधिकरण भाव साधन ।
इन चारो अर्थो का द्योतक ध्यान शब्द है मन भावन ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥६७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(६८)

स्थिर मन और तात्त्विक श्रुतज्ञान को ध्यान सज्ञा

श्रुतज्ञानेन मनसा यतो ध्यायन्ति योगिन: ।
तत: स्थिर मनो ध्यान श्रुतज्ञानं च तात्त्विकम् ॥६८॥

अर्थ चूँकि योगीजन श्रुतज्ञान रूप परिणत मन के द्वारा ध्यान करते है इसलिये स्थिर मन का ध्यान और स्थिर तात्त्विक श्रुतज्ञान का नाम भी ध्यान है।

६८ ॐ ह्री ज्ञानराजात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अवबोधसौधस्वरूपोऽहम् ।

जो योगी श्रुतज्ञान रूप परिणत अपने मन के द्वारा ।
करते हैं निज ध्यान वही पाते है ध्यानामृत धारा ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥६८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

नवमी को नो पदार्थ जानो ज्यों के त्यो आगम अनुसार।
दशमी को दश धर्म पालकर हो जाओ भव सागर पार॥

(६९)

आत्मा ज्ञान और ज्ञान आत्मा

ज्ञानादर्थान्तराऽप्राप्तादात्मा ज्ञानं न चान्यतः ।
एकं पूर्वापरीभूतं ज्ञानमात्मेति कीर्तितम् ॥६९॥

अर्थ- ज्ञान से आत्मा अर्थान्तर को, भिन्नता अथवा पृथक् पदार्थत्व को प्राप्त नही है किन्तु अन्य पदार्थो से वह अर्थान्तर को प्राप्त न हो ऐसा नही उनसे अर्थान्तरत्व अथवा भिन्नता को ही प्राप्त है। ऐसी स्थिति मे जो आत्मा वह ज्ञान और जो ज्ञान वह आत्मा इस प्रकार एक ही वस्तु पूर्वापरीभूत रूप से कभी आत्मा को पहले ज्ञान को पीछे और कभी ज्ञान को पहले आत्मा को पीछे रखकर कही गयी है।

६९ ॐ ह्री अखण्डज्ञानात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानरविस्वरूपोऽहम् ।

आत्म ज्ञान से आत्मा अर्थान्तर को होता कभी न प्राप्त ।
अन्य पदार्थो से अर्थान्तर अथवा सदा भिन्नता प्राप्त ॥
जो आत्मा है वही ज्ञान हे तथा ज्ञान जो वह आत्मा ।
इसका सम्यक् ज्ञान करे तो हो जाएगा परमात्मा ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥६९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(७०)

ध्याता को ध्यान कहने का हेतु

ध्येयाऽर्थाऽऽलम्बनं ध्यानं ध्यातुर्यस्मान्न भिद्यते ।
द्रव्यार्थिकनयात्तस्मादध्यातैव ध्यानमुच्यते ॥७०॥

अर्थ- द्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से ध्येय वस्तु के अवलम्बन रूप जो ध्यान है वह चूँकि ध्याता से भिन्न नहीं होता ध्याता आत्मा को छोड़कर अन्य वस्तु का उसमे आलम्बन नहीं इसलिये ध्याता ही ध्यान कहा गया है।

ग्यारस को तो ग्यारह अग पूर्व चौदह का हो सम्मान ।
द्वादश को द्वादश व्रत समझो जो है सर्व गुणो की खान॥

७० ॐ ह्रीं ध्यानध्यातादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

बुद्धोऽहम् ।

द्रव्यार्थिक नय की सुदृष्टि से ध्येय वस्तु अवलबन ध्यान ।
वह ध्याता से भिन्न नही है अत यही ध्याता है ध्यान ॥
ध्यान ध्येय ध्याता आदिक के साधन का न विकल्प जहाँ।
निश्चनय से वही ध्यान है कोई भी न विकल्प जहा ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥७०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(७१)

ध्यान के आधार और विषय को भी ध्यान कहने का हेतु

ध्यातरि ध्यायते ध्येय यस्मान्निश्चयमाश्रितैः ।
तस्मादिदमपि ध्यान कर्माऽधिकरण-द्वयम् ॥७१॥

अर्थ निश्चयनय का आश्रय लेने वालो के द्वारा चूँकि ध्येय को ध्याता मे ध्याया जाता है इसलिये यह कर्म तथा अधिकरण दोनो रूप भी ध्यान है ।

७१ ॐ ह्री कर्माधिकरणरूपध्यानविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शंकरोऽहम् ।

निश्चय नय का आश्रय लेने वाले ही करते यह ध्यान ।
जहाँ ध्येय को ध्याता मे ध्याया जाता वह होता ध्यान ॥
इसीलिए यह कर्म तथा अधिकरण रूप दोनो है ध्यान ।
नही ध्यान से भिन्न कभी हैं निश्चयनय से यह लो जान ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥७१॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

त्रयोदशी को तेरह विधि सम्यक् चारित्र भावना हो ।
चौदह को हो गुणस्थान चौदहवॉ नहीं कामना हो ॥

(७२)

ध्याति का लक्षण

इष्टे ध्येये स्थिरा बुद्धिर्या स्यात्सन्तान-वर्तिनी ।
ज्ञानाऽन्तराऽपरामृष्टा सा ध्यातिर्ध्यानमीरिता ॥७२॥

अर्थ- सन्तान क्रम से चली आई जो बुद्धि अपने इष्ट ध्येय मे स्थिर हुई दूसरे ज्ञान का स्पर्श नही करती वह ध्याति रूप ध्यान कही गई है ।

७२ ॐ ह्री निजकारणपरमात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

विष्णुस्वरूपोऽहम् ।

निश्चय नय से शुद्ध आत्मा ही है ध्येय प्रसिद्ध प्रधान ।
शुद्ध स्वात्मा मे वर्तन की बुद्धि सुथिर जब होती आन ॥
पर पदार्थ के किसी ज्ञान का भी स्पर्श नही करती ।
तब यह ध्यानारूढ बुद्धि ही ध्याति नाम धारण करती ॥
यही भाव साधन सुदृष्टि से ध्यान कही जाती है ध्याति ।
सतत प्रवाह रूप रहती है करती है आत्मा की ख्याति ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हे निर्वाण॥७२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(७३)

ध्यान के उक्त निरुक्तयर्थो की नय दृष्टि

एवं च कर्त्ता करणं कर्माऽधिकरण फलं ।
ध्यानमेवेदमखिलं निरुक्तं निश्चयान्नयात् ॥७३॥

अर्थ- इस प्रकार निश्चयनय की दृष्टि से यह कर्त्ता करण कर्म अधिकरण और फलरूप सब ध्यान ही कहा गया है ।

७३ ॐ ह्रीं कर्त्ताकरणादिभेदरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्भेदस्वरूपोऽहम् ।

अम्मावस के अँधियारे को मिथ्या भ्रम हर दूर करो ।
तथा पूर्णिमा ज्ञानचद्र की मिले तुम्हें यह यत्न करो ॥

यही ध्यान कर्त्ता कहलाता यही ध्यान है करण महान ।
यही कर्म है यही अधिकरण यही ध्यान फल रूप प्रधान ॥
निश्चय नय का यह स्वरूप है जो न परस्पर मे है भिन्न ।
एक दूसरे को न भिन्न करता है रहता सदा अभिन्न ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥७३॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(७४)

निश्चयनय से षट्कारकमयी आत्मा ही ध्यान है

स्वात्मानं स्वात्मनि स्वेन ध्यायेत्स्वस्मै स्वतो यतः ।
षट्कारकमयस्तस्माद् ध्यानमात्मैव निश्चयात् ॥७४॥

अथ- चूकि आत्मा अपने आत्मा को अपने आत्मा मे अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्मा के लिये अपने आत्म हेतु से ध्याता है । इसलिये कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादन और अधिकरण ऐसे षट्कारक रूप परिणत हुआ आत्मा ही निश्चयनय की दृष्टि से ध्यान स्वरूप हे ।

७४ ॐ ह्री षटकारकरूपात्मविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

स्वयभूस्वरूपोऽहम् ।

निश्चय नय से आत्मा अपने आत्मा को ही ध्याता है ।
अपने आत्मा मे अपने आत्मा के द्वारा ध्याता है ॥
यह आत्मा के लिए आत्म हेतु से ही तो ध्याता है ।
यही आत्मा परिणत हो षटकारक रूप कहाता है ॥
शुद्ध रूप से कर्त्ता कर्मादिक ये भिन्न नहीं होते ।
सभी आत्मा ध्यान समय षटकारक मय परिणत होते ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥७४॥

यो पंद्रह दिन एक पक्ष के बीतें एकी भाव सहित ।
दूजा पक्षपरम उज्जवल हो हो अद्वैत भावना युत ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(७५)

ध्यान की सामग्री

संग त्यागः कषायानां निग्रहो व्रत धारणम् ।
मनोऽक्षाणां जयश्चेति सामग्री ध्यान जन्मनि ॥७५॥

अर्थ- परिग्रहो का त्याग कषायो का निग्रह नियक्षण व्रतो का धारण और मन तथा इन्द्रियों का जीतना, यह सब ध्यान की उत्पत्ति निष्पत्ति मे सहाय भूत सामग्री है ।

७५ ॐ ह्रीं मनोऽक्षजयादिसामग्रीविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नि:संगोऽहम् ।

प्रथम ध्यान सामग्री जानो सकल परिग्रह का हो त्याग ।
सभी कषायो का निग्रह हो व्रत धारण का हो अनुराग ॥
मन को जयकर पचेन्द्रिय को जय करना ही उत्तम है ।
यही सर्वतोमुख्य ध्यान सामग्री निज हित सक्षम है ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥७५॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(७६)

मन को जीतने वाला जितेन्द्रिय कैसे ?

इन्द्रियाणां प्रवृतौ च निवृतौ च मनः प्रभु ।
मन एव जयेत्तस्माज्जिते तस्मिन् जितेन्द्रियः ॥७६॥

अर्थ- इन्द्रियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों में मन प्रभु सामर्थ्यवान् है इसलिए मन को जीतना चाहिये। मन के जीतने पर मनुष्य जितेन्द्रिय होता है इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करता है ।

७६ ॐ ह्रीं इन्द्रियप्रवृत्तिनिवृत्तिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

प्रभुत्वशक्तिसंपन्नोऽहम् ।

आश्विन मास शरद शशि निरखो ज्ञान चंद्र उर पाओ तुम ।
कार्तिक पावापुर मे अपने महावीर को ध्याओ तुम ॥

सभी इन्द्रियो का व्यापार कराने में मन पूर्ण समर्थ ।
जो मन को पहिले जय करता वही जितेन्द्रिय परम समर्थ॥
जिसने मन को कभी न जीता वह इन्द्रिय क्या जीतेगा ।
भव तरु मूल सुरक्षित है तो भव दुख कैसे रीतेगा ॥
वृक्ष मूल क्षय हो तो होती पत्र पुष्प उत्पत्ति नहीं ।
त्यो मिथ्यात्व मूल क्षय हो तो फिर भव की निष्पत्ति नहीं ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥७६॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(७७)

इन्द्रिय घोडे किसके द्वारा कैसे जीते जाते है ?

ज्ञान-वैराग्य-रज्जुभ्यां नित्यमुत्पथवर्तिन: ।
जितचित्तेन शक्यन्ते धर्तुमिनिन्द्रय-वाजिन: ॥७७॥

अर्थ- जिसने मन को जीत लिया है उसके द्वारा सदा उन्मार्गगामी इन्द्रिय रूपी घोडे ज्ञान और वैराग्य नामकी दो रज्जुओं रस्सियो के द्वारा धारण किये जा सकते है अपने वश में रक्खे जा सकते है ।

७७ ॐ ह्री उत्पथगामीन्द्रियवाजिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानरज्जुस्वरूपोऽहम् ।

जिसने मन को जीत लिया वह इन्द्रिय पांचों जय करता ।
इन्द्रिय रूपी अश्व ज्ञान वैराग्य रज्जु से वश करता ॥
शास्त्र ज्ञान करके भी यदि विषयों में ही मन जाएगा ।
तो उन्मार्ग गमन करके तू अरे अधोगति पाएगा ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥७७॥

मगसिर तप हित श्रेष्ठ मास है आकिंचन भावनामयी ।
पौषपास संक्रान्ति विचारों की जीतो साधना जयी ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(७८)

जिस उपाय से भी मन जीता जा सके उसे अपनाने की प्रेरणा

येनोपायेन शक्येत सन्नियन्तुं चलं मनः ।
स एवोपासनीयोऽत्र न चैव विरमेत्ततः ॥७८॥

अर्थ- जिस उपाय से भी चचल मन को भले प्रकार नियत्रण मे रखा जा सके वही उपाय यहाँ उपासनीय है व्यवहार मे लिये जाने के योग्य है उससे उपेक्षा धारण कर विरक्त कभी नही होता चाहिये जो भी उपाय बने उससे मन को सदा अपने वश में रखना चाहिए ।

७८ ॐ ह्रीं चलमनोरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अचलानंदस्वरूपोऽहम् ।

चचल मन को वश मे करने का उपाय ही है करणीय ।
मन पर करो नियत्रण तत्क्षण यह उपाय है उपासनीय ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥७८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(७९)

मन को जीतने के दो प्रमुख उपाय

संचिन्तयन्ननुप्रेक्षा स्वाध्याये नित्यमुद्यतः ।
जयत्येव मनः साधुनिरिन्द्रियाऽर्थ पराङ् मुखः ॥७९॥

अर्थ- जो साधक सदा अनुप्रेक्षाओ का अनित्यादि भावनाओं का भले प्रकार चिन्तन करता है स्वाध्याय मे उद्यमी और इन्द्रिय विषयो से प्राय मुख मोडे रहता है वह अवश्य ही मन को जीतता है ।

७९ ॐ ह्रीं अनुप्रेक्षादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नित्यचित्स्वरूपोऽहम् ।

माघ मोह भ्रम तम को नाशो समकित अंगीकार करो ।
होली खेलो फागुन निज गुण रंगों की बौछार करो ॥

अनित्यादि अनुप्रेक्षाओ का चिन्तन ही है श्रेष्ठ उपाय ।
इन्द्रिय विषयों से विरक्त हो उद्यम पूर्वक हो स्वाध्याय ॥
अहिंसादि व्रत की पच्चीस भवनाए भाना है योग्य ।
दर्शविशुद्धि भावना सोलह कारण भाना भी है योग्य ॥
जगत स्वभाव चिन्तवन करना कार्य स्वभाव चिन्तवन कर।
पचेन्द्रिय जय का उपाय करना तू सतत ज्ञान उर धर ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥७९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(८०)

स्वाध्याय का स्वरूप

स्वाध्यायः परमस्तावज्जपः पचनमस्कृतेः ।
पठनं वा जिनेन्द्रोक्त-शास्त्रस्यैकाग्र चेतसा ॥८०

अर्थ पचनमस्कृति रूप नमोकार मत्र का जो चित्त की एकाग्रता के साथ जपना है वह परम स्वाध्याय है अथवा जिनेन्द्र कथित शास्त्र का जो एकाग्र चित्त से पढना है वह स्वाध्याय है ।

८० ॐ ह्रीं पचमनस्कृतिजपादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ब्रह्मस्वरूपोऽहम् ।

स्वाध्याय का स्वरूप जानो पंच नमस्कृति रूप महान ।
मन को कर एकाग्र पंच परमेष्ठी मंत्र जपो धर ध्यान ॥
अ सि आ उ सा पांचों परमेष्ठी को वदन करो सुजान ।
अरहतो को द्रव्य और गुण पर्यायों से लो पहचान ॥
मोह क्षोभ से रहित बनोगे आत्म तत्त्व का होगा ज्ञान ।
स्वाध्याय ही परम सुतप है करता है निर्जरा महान ॥

चैत्र करो चिन्तन चैतन्य स्वरूपी चित स्वभाव वाला ।
यह वैशाख ज्ञान केवल की महिमा दर्शाने वाला ॥

हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥८०॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(८१)

स्वाध्याय से ध्यान और ध्यान से स्वाध्याय

स्वाध्यायाद् ध्यानमध्यास्तां ध्यानात्स्वाध्यायमाऽऽमनेत् ।
ध्यान-स्वाध्याय-सम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ॥८१॥

अर्थ- स्वाध्याय से ध्यान को अभ्यास मे लावे और ध्यान से स्वाध्याय को चरितार्थ करे। ध्यान और स्वाध्याय दोनो की सम्पत्ति सम्प्राप्ति से परमात्मा प्रकाशित होता है स्वानुभव मे लाया जाता है ।

८१ ॐ ह्रीं स्वाध्यायध्यानादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजगुणसम्पत्तिस्वरूपोऽहम् ।

स्वाध्याय के द्वारा करना सदा ध्यान का ही अभ्यास ।
इसी ध्यान से स्वाध्याय चरितार्थ करो धर उर विश्वास ॥
ध्यान तथा स्वाध्याय द्वयी से होता निज परमात्म प्रकाश ।
शुद्ध स्वानुभव का दाता है करता निज शुद्धात्म विकास ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥८१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८२)

वर्तमान में ध्यान के निषेधक अर्हन्मतानभिज्ञ है

येऽत्राहुर्न हि कालोऽयं ध्यानस्य ध्यायतामिति ।
तेऽर्हन्मताऽनभिज्ञत्वं ख्यापयन्त्यात्मनः स्वयम् ॥८२॥

अर्थ- जो लोग यहाँ यह कहते है कि ध्याता पुरुषो के लिये यह काल ध्यान का नहीं है वे स्वय अपनी अर्हन्मताऽनभिज्ञता जिन मत से अजानकारी व्यक्त करते है ।

ज्येष्ठ मास में महाव्रती बन हो जाओ तुम सब मे ज्येष्ठ।
अरु आषाढ़ ज्ञान वर्षाकर धो डालो पातक सब नेष्ठ ॥

८२ ॐ ह्रीं कालादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सदानंदस्वरूपोऽहम् ।

दु.खमय पचम काल मध्य में जो करते हैं ध्यान निरोध ।
वे अनभिज्ञ जिनागम से है करते निज कल्याण विरोध ॥
कुन्दकुन्द ने कहा मोक्ष पाहुड मे होता धर्म ध्यान ।
नहीं निषेध जिनागम मे है सबने माना धर्म ध्यान ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥८२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(८३)

शुक्ल ध्यान का निषेध है धर्म्य ध्यान का नहीं

अत्रेदानीं निषेधन्ति शुक्लध्यानं जिनोत्तमाः ।
धर्म्यध्यानं पुनः प्राहुः श्रेणिभ्यां प्राग्विवर्तिनाम् ॥८३॥

अर्थ- यहाँ इस काल मे जिनेन्द्र देव शुक्ल ध्यान का निषेध करते है परन्तु दोनो श्रेणियों से पूर्ववर्तियो के धर्म्यध्यान बतलाते है इससे ध्यान मात्र का निषेध नहीं ठहरता ।

८३ ॐ ह्रीं शङ्काकाङ्क्षादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निःशङ्कोऽहम् ।

चौथे गुणस्थान से होता उर मे धर्म ध्यान प्रारंभ ।
श्रेणी चढने के पहिले तक होता धर्म ध्यान बिन दंभ ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥८३॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(८४)

वज्रकाय के ध्यान विधान की दृष्टि

श्रावण में हरियाली निरखो उर को हरियाला कर लो ।
गुण अनंत के उपवन में जा भव की कालुषता हर लो ॥

यत्पुनर्वज्रकायस्य ध्यानमित्यागमे वच : ।
श्रेण्योर्ध्यानं प्रतीत्योक्तं तन्नाधस्तन्निषेधकम् ॥८४॥

अर्थ- उधर आगम मे जो वज्र कायस्य ध्यान वज्रकाय के ध्यान होता है ऐसा वचन निर्देश है वह दोनों श्रेणियों के ध्यान को लक्ष्य में लेकर कहा गया है और इसलिए वह नीचे के गुणस्थान वर्तियो के लिए ध्यान का निषेधक नहीं है ।

८४ ॐ ह्रीं निजकारणसमयसाररूपात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शुद्धात्मस्वरूपोऽहम् ।

दु खमय पचम काल मध्य मे शुक्ल ध्यान होता न कभी ।
वज्र काय सहनन नही है अत न होता शुक्ल कभी ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥८४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(८५)

वर्तमान ध्यान का युक्तिपुरस्सर समाधान

ध्यातारश्चेन्न सन्त्यद्य श्रुतसागर-पारगा: ।
तत्किमल्पश्रुतैरन्यैर्न ध्यातव्यं स्वशक्तित: ॥८५॥

अर्थ- यदि आजकल श्रुतसागर के पारगामी ध्याता नही है और इसलिये ऊँचे दर्जे का ध्यान नहीं बनता तो क्या अल्पश्रुतो को अपनी शक्ति के अनुसार ध्यान न करना चाहिये?

८५. ॐ ह्रीं ज्ञानसागरात्ममतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानसिन्धुस्वरूपोऽहम् ।

श्रुत समुद्र के महापारगामी ध्याता न अभी उपलब्ध ।
तो क्या अल्प श्रुत ज्ञानी को भी न ध्यान करना उपयुक्त ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥८५॥

मिला भाद्रपद उत्तम दशलक्षण व्रत पालो मन वच काय।
घाति अघाति कर्म क्षय करके सुख पाओ शाश्वत शिवदाय ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(८६)

वही कहते है

चरितारो न चेत्सन्ति यथाख्यातस्य सम्प्रति ।
तत्किमन्ये यथाशक्ति माऽऽचरन्तु तपस्विनः ॥८६॥

अर्थ- यदि इस समय यथाख्यात् चारित्र के आचरिता नहीं है तो क्या दूसरे तपस्वी शक्ति के अनुसार चारित्र का आचरण न करें ?

८६ ॐ ह्रीं यथाख्यातचारित्रविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निरंजनस्वरूपोऽहम् ।

मोक्ष प्राप्ति का श्रेष्ठ पूर्ववर्त्ती है यथाख्यात चारित्र ।
वह भी होता नहीं आजकल वज्र संहनन नहीं पवित्र ॥
तो क्या इसके पहिले के चारित्र नहीं धारण करना ।
यदि उत्तर विधि मे है तो फिर क्यो न उसे धारण करना॥
यदि निषेध में उत्तर है तो फिर चारित्र न अरे कहीं ।
नही मार्ग दृष्टित होगा जब प्रारभिक चारित्र नहीं ॥
मत चारित्र लोप करके तुम धर्म ध्यान का लोप करो ।
यथा शक्ति जितना हो उतना धर्म तथा चारित्र धरो ॥
ह्रदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥८६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(८७)

सम्यक् अभ्यासी को ध्यान के चमत्कारों का दर्शन

सम्यग्गुरूपदेशेन समभ्यस्यन्ननारतम् ।
धारणा-सौष्ठवाद् ध्यान-प्रत्ययानपि पश्यति ॥८७॥

ऐसे बीतें बारह मास हमारे यह पुरुषार्थ करो।
निश्चय भूत पदार्थ आत्मा पाओ निज सत्यार्थ वरो ॥

अर्थ- जो यथार्थ गुरु के उपदेश से निरन्तर (ध्यान का) अभ्यास करता है वह धारणा के सौष्ठव से अपनी सम्यक् और सुदृढ अवधारणा शक्ति के बल से ध्यान के प्रत्ययों को भी देखता है लोक चमत्कारी ज्ञानादि के अतिशयों को भी प्राप्त होता है ।

८७ ॐ ह्रीं धारणासौष्ठवविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

आनंदसागरोऽहम् ।

सम्यक् गुरु उपदेश प्राप्त कर जो करता निजध्यानाभ्यास।
वह धारणा सौष्ठव से भूषित हो पाता ध्यान प्रकाश ॥
आत्म ध्यान से चमत्कार युत परम ध्यान अतिशय पाता ।
श्रुत निर्दिष्ट बीज मत्र अवधारण कर सुख प्रगटाता ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥८७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(८८)

अभ्यास से दुर्गम शास्त्रों के समान ध्यान की भी सिद्धि

यथाभ्यासेन शास्त्राणि स्थिराणि स्युर्महान्तत्यपि ।
तथा ध्यानमपि स्थैर्यं लभतेऽभ्यासवर्तिनाम् ॥८८॥

अर्थ- जिस प्रकार अभ्यास से महाशास्त्र भी स्थिर सुनिश्चित हो जाते है उसी प्रकार अभ्यासियो का ध्यान भी स्थिरता को एकाग्रता अथवा सिद्धि को प्राप्त होता है ।

८८ ॐ ह्रीं शास्त्राभ्यासविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

विभुस्वरूपोऽहम् ।

ज्यों जड मति अभ्यास पूर्वक शास्त्र ज्ञान कर लेता है ।
त्यों ध्यानी ध्यानाभ्यास से ध्यान सिद्धि पा लेता है ॥
बारबार अभ्यास करो तो शास्त्र सरल हो जाते है ।
जो भी ध्यानाभ्यास करें वे ध्यान नृपति हो जाते हैं ॥

वर्ष सदा ही ऐसे बीतें मोहभाव से हम रीतें ।
युग बीते संवत्सर बीते हम संसार भाव जीतें ॥

अत ध्यान में शिथिल न होना हतोत्साह भी मत होना ।
परम श्रेष्ठ ध्यानाभ्यास मे श्रद्धा पूर्वक रत होना ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥८८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(८९)

ध्याता को परिकर्म पूर्वक ध्यान की प्रेरणा

यथोक्त-लक्षणो ध्याता ध्यातुमुत्सहते यदा ।
तदेदं परिकर्मादौ कृत्वा ध्यातु धीरधीः ॥८९॥

अर्थ- यथोक्त लक्षण से युक्त ध्याता जब ध्यान करने के लिए उत्साहित होता है तब वह धीरबुद्धि आरम्भ मे इस परिकर्म को सस्कार अथवा उपकरण समग्री के सज्जीकरण को करके ध्यान करे इससे उसको ध्यान मे स्थिरता एव सिद्धि की प्राप्ति हो सकेगी ।

८९ ॐ ह्रीं परिकर्मादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सहजबोधस्वरूपोऽहम् ।

बुद्धि पूर्वक श्रेष्ठ ध्यान सामग्री का सचय करना ।
उत्साहित ध्यानाभ्यास मे दत्त चित्त हो भ्रमहरना ॥
धीर बुद्धि हो ध्याता बनना सतत ध्यान करना दिन रात ।
आत्म ध्यान में सुस्थिर रहना ध्यान सिद्धि का होगा प्रात ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥८९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(९०)

विवक्षित परिकर्म का स्वरूप

शून्यागारे गुहायां वा दिवा वा यदि वा निशि ।
स्त्री-पशु-क्लीव-जीवानां क्षुद्राणामप्यगोचरे ॥९०॥

रवि को रविकी दिव्य ज्योति पा अपना आत्म तेज परखें।
सोम चद्र की विमल ज्योति में अपना ज्ञान भाव निरखें॥

अर्थ- जहाँ स्त्रियो पशुओं नपुंसक जीवो क्षुद्र मनुष्यो आदि का भी संचार न हो ऐसे शून्यागार में या गुफा मे अथवा अन्य किसी ऐसे स्थान में जो अच्छा साफ हो, जीव जन्तुओं से रहित प्रासुक पवित्र हो, ऊँचा नीचा न होकर समस्थल हो और चेतन अचेतन रूप सभी ध्यान विघ्नों से विवर्जित हो दिन को अथवा रात्रि के समय भूमि पर अथवा शिलापट्ट पर सुखासन से बैठा हुआ या खडा हुआ निश्चल अगो का धारक सम और सरल लम्बे शरीर को लिए हुए नाक के अग्र भाग मे दृष्टि को निश्चल किए हुए धीरे धीरे श्वास लेता हुआ बत्तीस दोषो से रहित कायोत्सर्ग से व्यवस्थित हुआ इन्द्रियें रूप लुटेरो को उनके विषयों से प्रयत्न पूर्वक हटाकर और सर्व विषयो से चिन्ता को खीच कर तथा ध्येय वस्तु मे रोककर निद्रारहित निर्भय और निरालस्य हुआ ध्याया अन्तर्विशुद्धि के लिए स्वरूप अथवा पररूप को ध्यावे ।

९० ॐ ह्री शून्यागारादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजानंदधामस्वरूपोऽहम् ।

जहॉ नपुसक स्त्री या पशु क्षुद्र मनुष्यो का सचार ।
कभी न होता ध्यान अत तुम सदा खोजना शून्यागार ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥९०॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(९१)

वही कहते है

अन्यत्र वा क्वचिद्देशे प्रशस्ते प्रासुके समे ।
चेतनाऽचेतनाऽशेष-ध्यानविघ्न विवर्जिते ॥९१॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न ९० मे देखे ।

९१ ॐ [illegible] प्रासुकादिस्थानविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चैतन्यनिवासस्वरूपोऽहम् ।

जीव जन्तु से रहित थान हो प्रासुक हो अरु सम थल हो।
चेतन तथा अचेतन विघ्नों से वर्जित हो निर्मल हो ॥

मंगल सर्वोत्तम मगल है अपना आत्म देव पावन ।
बुध को बुद्धि विमल कर अपनी शिवसुख पाएं मन भावन॥

हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥९१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(९२)

वही कहते है

भूतले वा शिलापट्टे सुखाऽऽसीनः स्थितोऽथवा ।
सममृज्वायतं गात्रं निःकम्पाऽवयवं दधत् ॥९२॥

इस गाथा का अर्थ गाथा नं ९० मे देखे ।

९२ ॐ ह्रीं भूतलादिस्थानरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निःकम्पचित्स्वरूपोऽहम् ।

शिला पट्ट हो या भूतल हो दिन हो अथवा रात्रि समय ।
पद्मासन हो या खडगासन हो निज मे निश्चल निर्भय ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥९२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(९३)

वही कहते है

नासाऽग्रन्यस्त-निष्पन्द-लोचनो मन्दमुच्छ्वसन् ।
द्वात्रिंशद्दोष-निर्मुक्त-कायोत्सर्ग व्यवस्थितः ॥९३॥

इस गाथा का अर्थ गाथा नं ९० में देखे ।

९३ ॐ ह्रीं कायोत्सर्गादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ब्रह्ममंदिरस्वरूपोऽहम् ।

हो नासाग्रदृष्टि अति निश्चल श्वासोच्छ्वास सतत हो सम।
कायोत्सर्ग दोष वर्जित हो तथा सदा हो निज में श्रम ॥

गुरु को गुरु की शरण प्राप्त कर मोक्षमार्ग पर हम आएँ।
शुक्रवार को धर्म श्रवण कर भव भावों पर जय पाएँ ॥

हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥९३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(९४)

वही कहते है

प्रत्याहृत्याऽक्ष-लुंटाकांस्तदर्थेभ्यः प्रयत्नतः ।
चिन्तां चाऽऽकृष्य सर्वेभ्यो निरुध्य ध्येय वस्तुनि ॥९४॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न ९० मे देखे ।

९४ ॐ ह्रीं अक्षलुटाकरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

स्ववैभवगुप्तस्वरूपोऽहम् ।

इन्द्रिय रूपी महा लुटेरो से बचना प्रयत्न पूर्वक ।
इनके विषयो से हट जाना रहना तुम विवेक पूर्वक ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥९४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(९५)

वही कहते है

निरस्त-निद्रो निर्भीतिर्निरालस्यो निरन्तरम् ।
स्वरूपं पररूपं वा ध्यायेदन्तर्विशुद्धये ॥९५॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न. ९० मे देखे ।

९५. ॐ ह्रीं निद्रारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्भयस्वरूपोऽहम् ।

ध्येय वस्तु में ध्यान लगाना निरालस्य निद्रा विरहित ।
निर्भय हो अन्तर्विशुद्धिहित ध्याना निज पर रूप विहित ॥

फिर शनि को दृढता से रक्खेंसंयम की हम नींव महान।
सातों बार सतत निज चिन्तन करके करें आत्म कल्याण॥

शुद्ध ध्यान परिणति के ही अनुरूप सुसज्जित हो जाना ।
परमेष्ठी प्रभुओं को वन्दन कर निज मे लय हो जाना ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥९५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(९६)

नय दृष्टि से ध्यान के दो भेद

निश्चयाद् व्यवहाराच्च ध्यानं द्विविधमागमे ।
स्वरूपालम्बन पूर्वं परालम्बनमुत्तरम् ॥९६॥

अर्थ- जैन आगम मे ध्यान को निश्चयनय और व्यवहार नय के भेद से दो प्रकार कहा गया है पहला निश्चय ध्यान स्वरूप के अवलम्बनरूप है और दूसरा व्यवहार ध्यान पर के अवलम्बन रूप है ।

९६ ॐ ह्रीं निश्चयव्यवहारध्यानविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

स्वाधीनस्वरूपोऽहम् ।

निश्चय अरु व्यवहार दृष्टि से सुनो ध्यान के दो है भेद ।
निश्चय निज अवलबन अरु पर अवलबन है व्यवहार सभेद॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥९६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(९७)

भिन्न ध्यानाभ्यास की उपयोगिता

अभिन्नमाद्यमन्यत्तु भिन्नं तत्तावदुच्यते ।
भिन्ने तु विहिताऽभ्यासोऽभिन्नं ध्यायत्यनाकुलः ॥९७॥

अर्थ- अथवा पहला निश्चयनयावलम्बी ध्यान अभिन्न और दूसरा व्यवहारनयावलम्बी ध्यान भिन्न कहा जाता है। जो भिन्न ध्यान मे अभ्यास कर लेता है वह निराकुल हुआ अभिन्न

अवसर्पिणी काल हो तो भी मन न हमारा अकुलाए ।
उत्सर्पिणी काल सम उत्तम धर्म ध्यान ही उर भाए ॥

ध्यान को ध्याने मे प्रवृत्त होता है।

१७ ॐ ह्रीं भिन्नाभिन्नध्यानविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम· ।

अनाकुलस्वरूपोऽहम् ।

पहिला निश्चय नयावलम्बी ध्यान अभिन्न कहाता है ।
भिन्न ध्यान का जो करता अभ्यास निराकुल होता है ॥
वही अभिन्न ध्यान ध्याने मे ध्याता प्रवृत्त होता है ।
अरु व्यवहार नयावलम्बी का ध्यान भिन्न ही होता है ॥
राजमार्ग है पहिले तुम व्यवहार नयाश्रित ध्यान करो ।
जब अभ्यास सफल हो जाए निश्चय आश्रित ध्यान करो ॥
भिन्न ध्यान मे सकल निकल परमात्मा का ही ध्यान प्रधान।
अरु अभिन्न में निज शुद्धात्मा का ही ध्यान परम सुखवान॥
धर्म ध्यान का लक्षण पूर्व बताया उस पर देना ध्यान ।
शुक्ल ध्यान की तैयारी के पूर्व यही है उत्तम ध्यान ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥९७॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(९८)

भिन्न रूप धर्म्यध्यान के चार ध्येयों की सूचना

आज्ञाऽपायौ विपाकं च संस्थानं भुवनस्य च ।
यथागममविक्षिप्त-चेतसा चिन्तयेन्मुनिः ॥९८॥

अर्थ- भिन्न रूप व्यवहार ध्यान मे मुनि आज्ञा, अपाय, विपाक, और लोक संस्थान का आगम के अनुसार चित्त की एकाग्रता के साथ चिन्तन करे।

९८ ॐ ह्रीं आज्ञापायादिध्यानविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निराबाधोऽहम् ।

बीताकाल अनादि आज तक जो अनंत कहलाता है ।
धर्म ध्यान का मिला सुअवसर, चेतन प्राणी ध्याता है ॥

आज्ञा विचय अपाय विचय अरु तृतिय विपाक विचय जानो।
चौथा लोक सस्थान विचय है इनके लक्षण पहचानो ॥
आगम के अनुसार चित्त को कर एकाग्र करो चिन्तन ।
श्रावक या मुनि पद जैसा हो तदनुसार ही हो वर्त्तन ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥९८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(९९)

ध्येय के नाम स्थापनादि रूप चार भेद

नाम च स्थापना द्रव्य भावश्चेति चतुर्विधम् ।
समस्तं व्यस्तमप्येतद् ध्येयमध्यात्म-वेदिभिः ॥९९॥

अर्थ- अध्यात्म वेत्ताओ के द्वारा नाम स्थापना द्रव्य और भाव रूप चार प्रकार का ध्येय समस्त तथा व्यस्त दोनो रूप से ध्यान के योग्य माना गया है ।

९९ ॐ ह्री ध्येयस्वरूपनामस्थापनादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

आनंदकंदोऽहम् ।

ध्येय वस्तु के चार भेद है नाम थापना द्रव्य अरु भाव ।
ध्यानी निज इच्छा से ध्येय बनाए ध्याये आत्म स्वभाव ॥
हृदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते हैं निर्वाण॥९९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(१००)

नाम स्थापनादि ध्येयों का सक्षिप्त रूप

वाच्यस्य वाचकं नाम प्रतिमा स्थापना मता ।
गुण-पर्ययवद्द्रव्यं भावः स्याद्गुण-पर्ययौ ॥१००॥

काल नहीं बाधक स्वध्यान में मास पक्ष दिन रच नहीं ।
जब जागे तू तभी सबेरा फिरतो पाप प्रपंच नहीं ॥

अर्थ- वाच्य का जो वाचक वह नाम है प्रतिमा स्थापना मानी गई है, गुण पर्यायवान को द्रव्य कहते है और गुण तथा पर्याय दोनो भाव रूप है।

१०० ॐ ह्री वाच्यवाचकविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निष्कलंकोऽहम् ।

सुनो वाच्य का जो वाचक है वही नाम कहलाता है ।
जो प्रतिबिम्ब किया सुस्थापित वह थापना कहाता है ॥
गुण पर्याय ध्रौव्य युत हो जो वही द्रव्य कहलाता है ।
गुण पर्याय वान लक्षण का भाव भाव कहलाता है ॥
ह्रदय तत्त्व अनुशासन युत हो तो निश्चित होता कल्याण ।
धर्म ध्यान फिर शुक्ल ध्यान कर मुनिवर पाते है निर्वाण॥१००॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१०१)

नाम ध्ये का निरुपण

आदौ मध्येऽवसाने यद्वाड्मयं व्याप्य तिष्ठति ।
ह्रदि ज्योतिष्मदुद्गच्छन्नामध्येयं तदर्हताम् ॥१०१॥

अर्थ- अपने आदि मध्य और अन्त मे जो वाड्मय को वाणी वा वर्णमाला को व्याप्त होकर तिष्ठता है वह अर्हन्तो का वाचक अर्ह पद है जो कि ह्रदय मे ऊँची उठती हुई ज्योति के रूप मे नाम ध्येय है ।

१०१. ॐ ह्रीं अनाद्यनन्तात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

आत्मज्योतिस्वरूपोऽहम् ।

अरहतो का वाचक अर्हं नाम ध्येय है मंत्र महान ।
आदि मध्य अरु अत वाडमय अर्ह ह्रीं सुमुख्य प्रधान ॥
सिद्ध चक्र का शुद्ध बीज है शब्द ब्रह्म है अक्षर ब्रह्म ।
इसे ध्यान का विषय बनाओ परंब्रह्म परमेष्ठी ब्रह्म ॥

वर्षों की साधना व्यर्थ हो जाती यदि न भूल हो दूर ।
भूल दूर होते ही होती सकल साधना शिव सुखपूर ॥

रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१०१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१०२)

वही कहते है

हृत्पकजे चतुष्पत्रे ज्योतिष्मन्ति प्रदक्षिणम् ।
अ-सि-आ-उ-साऽक्षराणि ध्येयानि परमेष्ठिनाम् ॥१०२॥

अथ चार पत्रो वाले हृदय कमल मे पचपरमेष्ठियो के वाचक अ, सि, आ, उ, सा, ये पाँच अक्षर ज्योतिष्मान् रूप मे प्रदक्षिणा करते हुए ध्यान किये जाने के योग्य है

१०२ ॐ ह्री हृदयकमलस्थिताक्षरविकल्परहितत्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानपंकजस्वरूपोऽहम् ।

हृदय कमल के चार पक्ष अरु मुख्य कर्णिका देखो आप ।
मुख्य कर्णिका पर अ अक्षर मत्रो पर चारो का जाप ॥
अ सि आ उ सा पाचो अक्षर ज्योतिष्मान ध्यान के योग्य ।
फिर प्रदिक्षणा सतत ध्यानमय अन्य ध्यान मत करो अयोग्य ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१०२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१०३)

वही कहते है

ध्यायेद-इ-उ-ए-ओ च तद्वन्वर्णानुदर्चिषः ।
मत्यादि-ज्ञान-नामानि मत्यादि-ज्ञानसिद्धये ॥१०३॥

अथ- उसी प्रकार ध्याता चार पत्रो वाले हृदय कमल मे मति आदि पाँच ज्ञान के नाम रूप जो अ इ, उ, ए, ओ, ये पाँच अक्षर है उन्हें मतिज्ञानादिकी सिद्धि के लिये ऊँची उठती हुई ज्योति किरणोके रूप मे ध्यावे अपने ध्यान का विषय बनावे ।

अनगिन तीर्थयात्रा करके भी न सफल हो पाया श्रम ।
आत्म तीर्थ की यात्रा में तू अब तक हुआ नहीं सक्षम ॥

१०३ ॐ ह्रीं निजैश्वर्यसंपन्नात्मतत्त्वस्वरूपाय नमः ।

चिदर्चिःस्वरूपोऽहम् ।

यदि मति ज्ञान सिद्धि पाना है तो निज हृदय कमल को देख।
अ इ उ ए ओ ये पाचो अक्षर ऊपर विधि सम लेख ।
इसे ध्यान का विषय बना तू मति श्रुत अवधि मन पर्यय ।
केवल ज्ञान रूप के पाचों ये अक्षर वाचक निश्चय ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१०३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१०४)

वही कहते है

सप्ताक्षरं महामन्त्रं मुख रन्ध्रेषु सप्तसु ।
गुरूपदेशतो ध्यायेदिच्छन् दूरश्रवादिकम् ॥१०४॥

अर्थ सप्ताक्षर वाला जो महामत्र णमो अरहताण है उसे गुरु के उपदेशानुसार मुख के ताप रन्ध्रो छिद्रो मे स्थापित करके वह ध्याता ध्यान करे जो दूर से सुनने देखने आदि रूप आत्म शक्तियों को विकसित करना अथवा तद्विषयक दूरश्रावादि ऋद्धियो को प्राप्त करना चाहता है ।

१०४ ॐ ह्री दूरश्रवाद्यिर्द्धिवाञ्छारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नित्यबोधस्वरूपोऽहम् ।

सप्ताक्षर का मंत्र णमो अरिहंताणं का जाप करो ।
विधि से कर्म नेत्र नासिका मुख में थापित आप करो ॥
दूर श्रवण आदिक सुऋद्धियां इसके द्वारा होती प्राप्त.।
ज्ञानी इनमें नहीं अटकते वै तो जपते हैं निज आप्त ॥

एक बार भी आत्म तीर्थ की यात्रा कर लेता प्राणी ।
फिर न कभी पर तीर्थों की यात्रा करता बनता ज्ञानी ॥

रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१०४॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१०५)

हृदयेऽष्टदलं पद्मं वर्गैः पूरितमष्टभिः ।
दलेषु कर्णिकायाँ च नाम्नाऽधिष्ठितमर्हतान् ॥१०५॥

अर्थ ध्याता हृदय मे पृत्वीमण्डल के मध्यस्थित आठ दल के कमल को दलो के आठ वर्गो से स्वर क, च, ट, त, प, य, श, वर्ग के अक्षरो से पूरित और कर्णिका मे अर्ह नाम स अधिष्ठित गणधर वलय से युक्त और माया से त्रि परीत, ह्री बीजाक्षर की तीन परिक्रमाओं से वेष्तित रूप मे ध्यावे और उसकी पूजा करे ।

१०५ ॐ ह्री हृदयकमलकर्णिकाधिष्ठितार्हनामविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चिदर्हस्वरूपोऽहम् ।

हृदय कमल दल अष्ट पाखुडी पर थापित कर आठो वर्ग।
स्वर क च ट त प य श अक्षर से पूरित हो वर्ग ॥
तथा कर्णिका पर हो अर्हं नाम अधिष्ठित महिमा मय ।
इसका ध्यान सतत हो उत्तम सभी ओर से हो निर्भय ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१०५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१०६)

वही कहते है

गणभृद्वलयोपेतं त्रि:परीतं च मायया ।
क्षौणी-मण्डल-मध्यस्थं ध्यायेदभ्यर्चयेच्च तत् ॥१०६॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न १०५ मे देखे ।

आत्मतीर्थ से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है कर निर्णय ।
निज स्वतीर्थ की यात्रा करके भव संकट पर पाले जय॥

१०६ ॐ ह्रीं गणधरवलयविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

गुणगणस्वरूपोऽहम् ।

गणधर वलय युक्त त्रय वलय बना ध्यान का श्रेष्ठ विषय।
"णमो जिणाण" आदिक आठ कोष्टक ही है प्रथम वलय ॥
तथा णमो सभिण्ण सोदाराणं सोलह का द्वितीय वलय ।
तथा णमो उग्गतवाण चौबीस का है तृतिय वलय ॥
धर्म ध्यान फल से इच्छित कार्यो की होती तत्क्षण सिद्धि।
पर ज्ञानी को नही चाहिए कोई सी भी सिद्धि ऋद्धि ॥
वह तो अपनी आत्म सिद्धि के लिए सतत करता निज ध्यान।
ध्यान ध्येय ध्याता विकल्प से विरहित रहता ज्यों अनजान॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१०६॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१०७)

अकारादि-हकारान्ता मंत्राः परमशक्तयः ।
स्वमण्डल-गता ध्येया लोकद्वय-फलप्रदाः ॥१०७॥

अर्थ- अकार से लेकर हकार पर्यन्त जो मत्र रूप अक्षर है वे अपने अपने मण्डल को प्राप्त हुए परम शक्तिशाली ध्येय है और दोनो लोक के फलो को देने वाले है ।

१०७ ॐ ह्रीं अकारादिहकारान्तमन्त्रविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

परमशक्तिसंपन्नोऽहम् ।

इस अकार से ले हकार तक मंत्र रूप जो अक्षर हैं ।
परम शक्ति शाली हैं अपने मंडल के वे अक्षर हैं ॥
लोक और परलोक फलों को देने में ये सक्षम हैं ।
शुद्ध वर्णमाला के सारे अक्षर इनमें उत्तम हैं ॥

जितने तीर्थंकर होते हैं आत्म तीर्थ यात्रा करते ।
आत्म तीर्थ की यात्रा करके ही वे सिद्ध स्वपद वरते ॥

अ आ इ ई आदिक सोलह अक्षर स्वर्ण वर्ण जानो ।
क ख ग घ आदिक तैतीस अक्षर व्यजन हैं मानो ॥
क च ट त प य श ये है शुभ सात वर्ग इनके ।
इनके भी है भेद असख्यो ध्यान दिव्य होते इनके ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१०७॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१०८)

नाम ध्येय का उपसहार

इत्यदीन्मत्रिणो मत्रानर्हन्मंत्र-पुरस्सरान् ।
ध्यायन्ति यदिह स्पष्टं नाम ध्येयमवैहि तत् ॥१०८॥

अर्थ- इन अर्हं मत्रपुरस्सार मत्रो को आदि लेकर और भी मत्र है जिन्हे नाम ध्येय रूप से मात्रिक ध्याते है उन सबको भी स्पष्ट रूप से नाम ध्येय समझो ।

१०८ ॐ ह्री आकर्षणवशीकरणादिमन्त्रविकल्परिहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानमंत्रस्वरूपोऽहम् ।

एकाक्षर या दो अक्षर या चार पाच छह हों अक्षर ।
सोलह अक्षर या पैतीस हो ध्यान योग्य सुन्दर अक्षर ॥
अर्ह मत्र पुरस्सर आदिक मत्र अनेकों है विख्यात ।
नाम ध्येय ये कहलाते है मात्रिक ध्याते है दिन रात ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१०८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१०९)

स्थापना ध्येय

जब असीम पुण्योदय होता तब पुरुषार्थ जागता है ।
स्वाध्याय करते ही तो सारा अज्ञान भागता है ॥

जिनेन्द्र-प्रतिबिम्बानि कृत्रिमाण्यकृतानि च ।
यतोक्तान्यागमे तानि तथा ध्यायेदशंकितम् ॥१०९॥

अर्थ जिनेन्द्र की जो प्रतिमाएं कृत्रिम और अकृत्रिम है तथा आगम में जिस रूप मे कही गई है उन्हें उसी रूप मे ध्याता नि शक होकर अपने ध्यान का विषय बनावे यह स्थापना ध्येय है ।

१०९ ॐ ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमजिनबिम्बविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अकृत्रिमध्रुवस्वरूपोऽहम् ।

स्थापना ध्येय को जानो कृत्रिम अकृत्रिम जिन प्रतिमा ।
उन्हे ध्यान का विषय बनाता ध्याता नि शकित अपना ॥
परब्रह्म का ध्यान ध्वनित कर निज अनुभूति लीन होता ।
बिन्दु युक्त ध्रुव अर्ध चद्र लख सिद्ध शिला पति ही होता॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१०९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(११०)

द्रव्य ध्येय

यथैकमेकदा द्रव्यमुत्पित्सु स्थास्नु नश्वरम् ।
तथैव सर्वदा सर्वमिति तत्त्वं विचिन्तयेत् ॥११०॥

अर्थ- जिस प्रकर एक द्रव्य एक समय मे उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप होता है उसी प्रकार सर्वद्रव्य सदा काल उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप होते रहते है इस तत्त्व को ध्यात चिन्तन करे ।

११० ॐ ह्रीं उत्पादव्ययध्रौव्यविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अव्ययस्वरूपोऽहम् ।

एक द्रव्य ज्यो एक समय मे है उत्पाद ध्रौव्यमय रूप ।
सर्व द्रव्य भी सदाकाल हैं त्यों उत्पाद ध्रौव्य व्यय रूप ॥

जब अज्ञान भाग जाता है तब होता है सम्यक् ज्ञान ।
फिर सम्यक् चारित्र प्राप्त कर होता प्राणी महामहान ॥

इसी तत्त्व का ध्याता चिन्तन करता रहता है दिन रात ।
द्रव्य ध्येय यह कहलाता है आत्म ध्यान यह भी विख्यात ॥
एक द्रव्य का जो स्वरूप है वैसा सब द्रव्यों का रूप ।
एक समयवर्त्ती ज्यो वैसे सर्व समय वर्त्ती है रूप ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥११०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१११)

यथात्म्य तत्त्व स्वरूप

चेतनोऽचेतनो वाऽर्थो यो यथैव व्यवस्थित: ।
तथैव तस्य यो भावो याथात्म्यं तत्त्वमुच्यते ॥१११॥

अर्थ-जो चेतन या अचेतन पदार्थ जिस प्रकार से व्यवस्थित है उसका उसी प्रकार से जो भाव है उसको याथात्म्य तथा तत्त्व कहते है ।

१११ ॐ ह्री चेतनाचेतनपदार्थविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजसिद्धस्वरूपोऽहम् ।

जैसे चेतन तथा अचेतन सर्व पदार्थ व्यवस्थित है ।
उस प्रकार से उसी रूप से उसके भाव अवस्थित हैं ॥
जिसका जो है भाव वही परिणाम यथात्म्य कहाता है ।
वही तत्त्व है उसका सम्यक् ज्ञान ज्ञान कहलाता है ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१११॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(११२)

वही कहते है

शिवपथ में विष कंटक हो तो उनसे कभी न घबराना ।
उन्हें कुचलते हुए सजग तुम आगे ही बढ़ते जाना ॥

अनादि निधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति जलकल्लोलवज्जले ॥११२॥

अर्थ- द्रव्य जो कि अनादिनिधन है आदि अन्त से रहित है उसमें प्रतिक्षण स्वपर्यायें जल मे जल कल्लोलों की तरह उपजती तथा विनशती रहती है ।

११२ ॐ ह्री उन्मज्जननिमज्जनरूपपर्यायविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम.।

ध्रुवज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

द्रव्य अनादि निधन है शाश्वत आदि अत से रहित सदा ।
प्रतिक्षण पर्याये होती उत्पन्न विनाश विचार सदा ॥
जल कल्लोलो सम उपजा करती है और विनशती हैं ।
द्रव्य ध्रौव्य पर्याय विनश्वर यही द्रव्य की सुस्थिति है ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥११२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(११३)

यद्विवृतं यथापूर्वं यच्च पश्चाद्विवर्त्स्यति ।
विर्वर्तते यदत्राऽद्य तदेवेदमिदं च तत् ॥११३॥

अर्थ- जो यथापूर्व पूर्वक्रमानुसार पहले विवर्तित हुआ जो पीछे विवर्तित होगा और जो इस समय यहाँ विवर्तित हो रहा है वही सब यह (द्रव्य) है और यही उन सबरूप है ।

११३ ॐ ह्री गुणपर्यायविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

स्वयंचित्स्वरूपोऽहम् ।

द्रव्य त्रिकाली अपने गुण पर्याय सहित रहता ध्रुव रूप ।
द्रव्य तथा गुण पर्याये सब एक अभेद द्रव्य का रूप ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥११३॥

मुक्तिद्वार पा सभी कर्म हर हो जाना बिलकुल निष्कर्म ।
त्रिलोकाग्र मे सिद्ध शिला पर रजित होना पा ध्रुव धर्म॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(११४)

सहवृत्ता गुणास्तत्र पर्यायाः क्रमवर्तिनः ।
स्यादेतदात्मकं द्रव्यमेते च स्युस्तदात्मकाः ॥११४॥

अर्थ- द्रव्य मे गुण सहवर्त्ती एकसाथ युगपत् प्रवृत्त होनेवाले और पर्याये क्रमवर्त्ती क्रमश प्रवृत होनेवाली है। द्रव्य इन गुण पर्यायात्मक है और ये गुण पर्याय द्रव्यात्मक है द्रव्य से गुण पर्याय जुदे नही और न गुण पर्यायो से द्रव्य कोई जुदी वस्तु है ।

११४ ॐ ह्री सहवृत्तगुणादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

सद्बोधस्वरूपोऽहम् ।

द्रव्यो में गुण सहवर्त्ती है अरु पर्याये क्रमवर्त्ती ।
द्रव्य सुगुण पर्यायात्मक है गुण पर्याय द्रव्य वर्त्ती ॥
गुण पर्याय न प्रथक द्रव्य से गुण पर्यायवान है द्रव्य ।
द्रव्य नही है पृथक स्वगुण पर्यायो युत त्रैकालिक द्रव्य ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥११४॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(११५)

एवं विधमिदं वस्तु स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मकम् ।
प्रतिक्षणमनाद्यन्तं सर्वं ध्येयं यथास्थितम् ॥११५॥

अर्थ- इस प्रकार यह द्रव्य नाम की वस्तु जो प्रक्षिण स्थिति उत्पत्ति और व्यय रूप है तथा अनादि-निधन है वह सब यथास्थित रूप मे ध्येय है ध्यान का विषय है ।

११५ ॐ ह्रीं सनातनात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सद्ब्रह्मस्वरूपोऽहम् ।

द्रव्य नाम की वस्तु जु प्रतिक्षण स्थिति उत्पत्ति अरु व्यय रूप।
तथा अनादि निधन सुव्यवस्थित ये ही सम्यक् ध्येय स्वरूप॥

मोक्ष मार्ग पा करके भी यदि पुण्य भाव में उलझोगे ।
घोर रसातल में जाओगे पुन नहीं फिर सुलझोगे ॥

जैसा है वैसा ही उसका रूप ध्यान का विषय प्रधान ।
अन्य रूप है नहीं कभी भी उसका कभी न करना ध्यान ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥११५॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११६)

भाव ध्येय

अर्थ व्यंजन पर्यायः मूर्ताऽमूर्ता गुणाश्च ये ।
यत्र द्रव्ये यथाऽवस्थास्तांश्च तत्र तथा स्मरेत् ॥११६॥

अर्थ- जो अर्थ तथा व्यजन पर्याये और मूर्तिक तथा अमूर्तिक गुण जिस द्रव्य मे जैसे अवस्थित है उनको वहाँ उसी रूप मे ध्याता चिन्तन करे यह भाव ध्येयका स्वरुप है ।

११६ ॐ ह्री अर्थव्यञ्जनपर्यायविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निराकारोऽहम् ।

अर्थ तथा व्यजन पर्याये मूर्तिक तथा अमूर्तिक गुण ।
जिसमे जैसे सदा अवस्थित वैसा ही करना चिन्तन ॥
छहो द्रव्य मे तो होती है सतत अर्थ पर्यायं महान ।
जीव और पुदगल मे होती है व्यंजन पर्याय प्रधान ॥
जैसा जो है उसी रूप मे ध्याना ध्याता का है रूप ।
भाव ध्येय का यह स्वंरूप है शुद्ध ध्यान के है अनुरूप ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥११६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(११७)

द्रव्य के छह भेद और उनमें ध्येयतम आत्मा

एक श्वास में अठ दस बार किया है जनम मरण बहुबार।
यह निगोद दुख कभी न होने देता लघु सुख भी इक बार॥

पुरुष: पुद्गल: कालो धर्माऽधर्मौ तथाऽम्बरम् ।
षड्विधं द्रव्यमाख्यातं तत्र ध्येयतम: पुमान् ॥११७॥

अर्थ- पुरुष (जीवात्मा) पुद्गल, काल, धर्म, अधर्म और आकाश ऐसे छह भेद रूप द्रव्य कहा गया है। उन द्रव्य भेदो मे सबसे अधिक ध्यान के योग्य पुरुष रूप आत्मा है ।

११७ ॐ ह्री षट्द्रव्यविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजचिद्द्रव्यस्वरूपोऽहम् ।

आप द्रव्य छह भेद जान लो जीवात्मा पुद्गल अरु काल।
धर्म अधर्म आकाश भेद छह इनकी कथनी है सुविशाल ॥
जीवात्मा को पुरुष कहा है यही आत्मा है पुल्लिग ।
निश्चय से तो यह अभेद है यह अखड सर्वथा अलिग ॥
पुद्गल मूर्तिक शेष अमूर्तिक जीव और पुद्गल सक्रिय ।
शेष चार निष्क्रिय पहचानो काल न अस्तिकाय है किय ॥
पुद्गल एक प्रदेशी जानो है परमाणु रूप गुणवान ।
नाना अणुओ के मिलने पर है स्कध रूप पहचान ॥
जीव तथा पुद्गल दोनो ही विभाव रूप भी परिणमते ।
शेष चार तो स्वाभाविक परिणमन रूप ही परिणमते ॥
धर्म अधर्म आकाश द्रव्य सख्या मे एक एक जानो ।
काल द्रव्य को सख्या मे तुम असख्यात् ही पहचानो ॥
जीव द्रव्य तो अनत है अरु पुद्गल द्रव्य अनतानत ।
सभी द्रव्य अपने अपने गुण पर्यायो से युक्त महंत ॥
जीव अरु पुद्गल दोनो मे सभव सकोच और विस्तार ।
शेष द्रव्य चारो मे सभव ना सकोच और विस्तार ॥
है अखड आकाश एक पर इसके भी जानो दो भेद ।
लोकाकाश अलोकाकाश यही दो भेद स्वरूप अभेद ॥

जब तक महामोह का पर्वत गलने में होती है देर ।
तब तक सम्यक् दर्शन दुर्लभ होता रहता है अंधेर ॥

पाँचों द्रव्य जहाँ अवलोकित होते वह है लोकाकाश ।
जहाँ मात्र आकाश द्रव्य है वह है द्रव्य अलोकाकाश ॥
भू अप तेज वायु वनस्पति ये एकेन्द्रिय थावर हैं ।
शेष जीव दो इन्द्रिय आदिक त्रस है कभी न थावर है ॥
तीन लोक के मध्य राजु चौदह की त्रस नाडी सुविशाल ।
सभी जीव त्रस उसमें रहते इनकी संख्या बहुत विशाल ॥
थावर त्रस नाडी के बाहर रहते सर्व लोक में वास ।
जीवादिक सब को अवगाहन देता है वह है आकाश ॥
जो स्पर्श गध रस रूपी गुणवाला वह पुदगल है ।
इसके गुण है बीस तथा मिलता गलता वह पुद्गल है ॥
जीव और पुद्गल के चलने मे सहकारी धर्म पिछान ।
जीव और पुद्गल ठहरे तो सहकारी अधर्म लो जान ॥
जो द्रव्यो के परिवर्त्तन मे सहकारी वह काल प्रसिद्ध ।
निश्चय अरु व्यवहार काल दो कहलाते आगम से सिद्ध ॥
लोकाकाश इक इक प्रदेश पर इक इक कालाणु सुस्थित।
रत्नराशि की भाति सदा है घटा घडी मुहूर्त्त सहित ॥
छह द्रव्यो के भेद प्रभेद सकल जिन आगम से जानो ।
फिर तुम अपने आत्म द्रव्य को पूर्ण परीक्षा कर मानो ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥११७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(११८)

इन सब द्रव्यो में सबसे अधिक ध्यान के योग्य आत्म द्रव्य है ।
आत्म द्रव्य सर्वाधिक ध्येय क्यों ?

आध्यात्मिक जीवन का जिसने मर्म नहीं पहिचाना है ।
अन्र्तज्योति न जगती उसकी भव दुख पाता नाना है ॥

सति हि ज्ञातरि ज्ञेयं ध्येयतां प्रतिपद्यते ।
ततो ज्ञान स्वरूपोऽयमात्मा ध्येयतमः स्मृतः ॥११८॥

अर्थ ज्ञाता के होने पर ही ज्ञेय ध्येयता को प्राप्त होता है। इसलिये ज्ञान स्वरूप यह आत्मा ही ध्येयतम-सर्वाधिक ध्येय है ।

११८ ॐ ह्री ज्ञाननीरजात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

बोधजलस्वरूपोऽहम् ।

ज्ञेय ध्येयता को पाता हे ज्ञाता के होने पर ही ।
ज्ञान स्वरूप आत्मा ही सर्वाधिक ध्येय ध्येय तप ही ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥११८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(११९)

आत्म द्रव्य के ध्यान मे पचपरमेष्ठि के ध्यान की प्रधानता

तत्राऽपि तत्त्वतः पंच ध्यातव्याः परमेष्ठिन ।
चत्वारः सकलास्तेषु सिद्धः स्वामी तु निष्कलः ॥११९॥

अर्थ- आत्मा के ध्यानो मे भी वस्तुत पच परमेष्ठी ध्यान किये जाने के योग्य है जिसमें चार अर्हन्त आचार्य उपाध्याय और साधु परमेष्ठी सकल है शरीर साहित है और सिद्ध परमेष्ठी निष्कल शरीर रहित है तथा स्वामी है ।

११९ ॐ ह्री शरीररहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निष्कलोऽहम् ।

आत्मा के ध्यानो मे उत्तम पाचो परमेष्ठी का ध्यान ।
निष्कल श्रेष्ठ सिद्ध परमेष्ठी शेष चार है सकल महान ॥
स्वात्मा की सपत्ति पूर्ण के स्वामी तो हैं सिद्ध महंत ।
शेष चार भी होने वाले स्व सपत्ति अधिपति भगवंत ॥

धन कुटुम्ब में गाढ़ी ममता अरु आसक्ति न करो कभी।
त्याग ममत्व, धरो समता उर भव दुख अब तो हरो सभी

रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥११९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२०)

सिद्धात्मक ध्येय का स्वरूप

अनन्त दर्शन ज्ञान-सम्यक्त्वादि गुणात्मकम् ।
स्वोपात्ताऽनन्तर-त्यक्त-शरीराऽऽकार-धारिणम् ॥१२०॥

अर्थ- जो अनन्त दर्शन अनन्तज्ञान और सम्यक्त्वादि गुणमय है स्वगृहीत और पश्चात् परित्यक्त ऐसे (चरम) शरीर के आकार का धारक है साकार और निराकार दोनो रूप हे अमूर्त है अजर है अमर है स्वच्छ स्फटिक मे प्रतिबिम्बित जिनबिम्ब के समान है लोक के अग्र शिखर पर आरूढ है सुख सम्पदा से परिपूर्ण है बाधाओ से रहित और कर्म कलंक से विमुक्त है उस सिद्धात्मा को ध्याया ध्यावे अपने ध्यान का विषय बनावे ।

१२० ॐ ह्रीं अनन्तदर्शनरूपात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानवपुरोऽहम् ।

जो अनत दर्शन अनत ज्ञानादि गुणो से है सम्पन्न ।
स्वगृहीत तन फिर परित्यक्त सुचरम शरीराकार प्रसन्न ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१२०॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१२१)

वही कहते है

साकार च निराकारममूर्तमजराऽमरम् ।
जिनबिम्बमिव स्वच्छ-स्फटिक-प्रतिबिम्बितम् ॥१२१॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न १२० में देखें ।

जितनी जितनी ममता जाती उतनी समता आती है ।
साम्य भाव औषधि पीते ही यह ममता मर जाती है ॥

१२१ ॐ ह्रीं अजरात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अमरोऽहम् ।

है साकार अरु निराकार है अजर अमूर्त और गुणवान ।
स्वच्छ स्फटिक सम प्रतिबिम्बित है जिनबिम्ब समान महान॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१२१॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१२२)

वही कहते है

लोकाग्र-शिखराऽऽरूढमुदूढ-सुखसम्पदम् ।
सिद्धात्मान निराबाधं ध्यायेन्निर्धूत कल्मषम् ॥१२२॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न १२० मैं देखे ।

१२२ ॐ ह्री कल्मषरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निराबाधोऽहम् ।

है लोकाग्र शिखर पर वे आरुढ अनत सौख्य परिपूर्ण ।
बाधाओ से रहित कर्म के दोषो से विमुक्त आपूर्ण ॥
ऐसे सिद्धात्मा को ध्याता ध्यावे उत्तम भाव सहित ।
इन्हे ध्यान का विषय बनावे हो जाए परभाव रहित ॥
फिर वह बधो से छूटेगा सिद्धात्मा बन जाएगा ।
त्रस नाडी के सर्वोपरि जा सिद्ध शिला ध्रुव पाएगा ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१२२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

आध्यात्मिक साधना हेतु हो जाओ अंतरमें संलग्न ।
पर पदार्थ से दृष्टि हटाकर निज में ही हो जाओ मग्न॥

(१२३)

अर्हदात्मक ध्येय का स्वरूप

तथाऽऽद्यमाप्तमाप्तानां देवानामधिदैवतम् ।
प्रक्षीण-घातिकर्माणं प्राप्ताऽनन्त-चतुष्टयम् ॥१२३॥

अर्थ- तथा जो आप्तो का प्रमुख आप्त है, देवों का अधिदेवता है, घाति कर्मो को अत्यन्त क्षीण किये हुए है, अनन्त चतुष्टय को प्राप्त है, भूतल को दूर छोड़कर नभस्तल मे अधिष्टित है, अपने परम औदारिक शरीर की प्रभा से भास्कर को तिरस्कृत कर रहा है, चौंतीस महान् आश्चर्यो अतिशयो और प्रातिहार्यो से सुशोभित है, मुनियों तिर्यचों मनुष्यों और स्वर्गादिक के देवो की सभाओं से भले प्रकार सेवित है, जन्माभिषेक आदि के अवसरों पर सातिशय पूजा को प्राप्त हुआ है, केवलज्ञान द्वारा निर्णीत सकल तत्त्वों का उपदेशक है, प्रशस्त लक्षणों से परिपूर्ण उच्च शरीर का धारक है, आकाश स्फटिक के अन्त में स्थित जाज्वल्यमान ज्वालावाली अग्नि के समान उज्ज्वल है, तेजो मे उत्तम तेज और ज्योतियों मे उत्तम ज्योति है, उस अर्हन्त परमात्मा को ध्याता नि श्रेयस की "जन्म जरा मरणादि के दुखों से रहित शुद्ध सुख स्वरूप निर्वाण की" प्राप्ति के लिये ध्यावे अपने ध्यान में उतारे।

१२३ ॐ ह्री निजाप्तात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निष्कर्मस्वरूपोऽहम् ।

जो आप्तों मे प्रमुख आप्त है देवो के अधिदेव महान ।
घाति चतुष्क कर्म क्षय कर्त्ता पूर्ण अनंत चतुष्टय वान ॥
इन्हें ध्यान का ध्येय बनाए तो पाएगा मोक्ष महान ।
ध्यान ध्येय ध्याता विकल्पतज करके पाएगा निर्वाण ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१२३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१२४)

वही कहते है

आत्मीयता के भावो से अनुप्राणित यह जीवन हो ।
तदनुरूप हो प्रवृत्ति अपनी मानव जीवन धन धन हो ॥

दूरमुत्सृज्य भू-भागं नभस्तलमधिष्ठितम् ।
परमौदारिक-स्वाऽङ्ग-प्रभा-भर्त्सित-भास्करम् ॥१२४॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न १२३ मे देखे ।

१२४ ॐ ह्री परमौदारिकशरीररहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

आनंदभास्करोऽहम् ।

जो भूतल तज अतरीक्ष नभ तल मे नाथ अधिष्ठित हे ।
परमोदारिक प्रभु तन आभा से रवि तेज तिरस्कृत हे ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१२४॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१२५)

वही कहते है

चतुस्त्रिशन्महाऽऽश्चर्यैः प्रातिहार्यैश्च भूषितम् ।
मुनि-तिर्यङ्-नर-स्वर्गि-सभाभिः सन्निषेवितम् ॥१२५॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न १२३ मे देखे

१२५ ॐ ह्री चैतन्यभूषणात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चिच्चमत्कारस्वरूपोऽहम् ।

चौतीसो अतिशय के स्वामी अष्ट प्रातिहार्यो से युक्त ।
सुर नर मुनि तिर्यच आदि से द्वादश सभा सदा सयुक्त ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१२५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१२६)

वही कहते है

आत्म शुद्धि का ही संकल्प सुदृढ होता जब अंतर में ।
फिर अशुद्धता कहीं न रहने पाती बाह्यभ्यंतर में ॥

जन्माऽभिषेक-प्रमुख-प्राप्त-पूजाऽतिशायिनम् ।
केवलज्ञान-निर्णीत विश्वतत्त्वोपदेशिनम् ॥१२६॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न १२३ मे देखे ।

१२६ ॐ ह्री पूजातिशयादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अजन्मास्वरूपोऽहम् ।

गर्भ जन्म तप ज्ञान महाकल्याणक पूजा को है प्राप्त ।
सकल तत्त्व उपदेश प्रदाता तीन लोक के स्वामी आप्त ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१२६॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१२७)

वही कहते है

प्रशस्त-लक्षणाकीर्ण-सम्पूर्णोदग्र-विग्रहम् ।
आकाश-स्फटिकान्तस्थ-ज्वलज्ज्वालानलोज्ज्वलम् ॥१२७॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न १२३ मे देखे ।

१२७ ॐ ह्रीं प्रशस्तलक्षणाकीर्णविग्रहरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चैतन्यलक्ष्मस्वरूपोऽहम् ।

सर्व प्रशस्त लक्षणो से शोभित सर्वोत्तम देह सहित ।
है निर्मल आकाश स्फटिक सम जाज्वल्यमान निश्चित ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१२७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१२८)

वही कहते है

शास्त्रो की ही सार पूर्ण बातों का चिन्तन सदा करो ।
पर से दृष्टि हटाकर अपनी सारे ही भव दोष हरो ॥

तेजसामुत्तमं तेजो ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम् ।
परमात्मानमर्हन्तं ध्यायेन्निःश्रेयसाऽऽप्तये ॥१२८॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न १२३ मे देखे ।

१२८ ॐ ह्री स्वपरमात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानलक्ष्मस्वरूपोऽहम् ।

उत्तम ज्योति स्वरूप तेजमय परमात्मा अरहंत महान ।
नि श्रेयस सुख प्राप्ति हेतु इनका ही करना उत्तम ध्यान ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१२८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१२९)

अर्हन्त देव के ध्यान का फल

वीतरागोऽप्ययं देवो ध्यायमानो मुमुक्षिभिः ।
स्वर्गाऽपवर्ग-फलदः शक्तिस्तस्य हि तादृशी ॥१२९॥

अर्थ- मुमुक्षुओ के द्वारा ध्यान किया गया यह अर्हन्तदेव वीतराग होते हुए भी उन्हें स्वर्ग तथा अपवर्ग-मोक्षरूप फल का देने वाला है । उसकी वैसी शक्ति सुनिश्चित है ।

१२९ ॐ ह्री विरागात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शांतस्वरूपोऽहम् ।

जो मुमुक्षु करते है अरहतो का ध्यान सुविधि पूर्वक ।
स्वर्ग मोक्ष सुख को पाते है वीतराग ध्यान पूर्वक ॥
अरहतो ने घाति कर्म क्षय कर भव बंधन को नाशा ।
जिसने इनका ध्यान किया उसने ही भव बधन नाशा ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१२९॥

वीतराग भगवतो के पथ पर जो निर्भय हो चलते ।
वे ही आत्म ज्योति पाते हैं वे ही कर्मों को दलते ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(१३०)

आचार्य-उपाध्याय-साधु-ध्येय का स्वरूप

सम्यग्ज्ञानादि-सम्पन्नाः प्राप्तसप्तमहर्द्धयः ।
यथोक्त-लक्षणा ध्येया सूर्युपाध्याय-साधव : ॥१३०॥

अर्थ जो सम्यग्ज्ञानादि से सम्पन्न है सम्यग्ज्ञान सम्यक् श्रद्धान और सम्यक् चारित्र जैसे सद्‌गुणो से समृद्ध है जिन्हे सात महाऋद्धियाँ लब्धियाँ प्राप्त हुई है और जो यथोक्त आगमोक्त लक्षण के धारक है ऐसे आचार्य उपाध्याय और साधु ध्यान के योग्य है ।

१३० ॐ ह्रीं सप्तममहर्द्धिसपन्नाचार्यादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानर्द्धिस्वरुपोऽहम् ।

सम्यक् ज्ञानादिक गुणपति आचार्य सुगुरु पाठक मुनिराज ।
ऋद्धि सिद्धियों के स्वामी है ये सब ध्यान योग्य ऋषिराज ॥
है छत्तीस गुणो के धारी श्री आचार्य ध्यान के योग्य ।
है पच्चीस गुणो के धारी उपाध्याय ध्यान के योग्य ॥
अट्ठाईस मूल गुणधारी है मुनिराज ध्यान के योग्य ।
आगमोक्त लक्षण के धारी मुनिवर सभी ध्यान के योग्य ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१३०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१३१)

प्रकारान्तर से ध्येय के द्रव्य भाव रूप दो ही भेद

एवं नामादि-भेदेन ध्येयमुक्तं चतुर्विधम् ।
अथवा द्रव्य-भावाभ्यां द्विधैव तदवस्थितम् ॥१३१॥

अर्थ- इस प्रकार नाम आदि के भेद से ध्येय चार प्रकार का कहा गया है। अथवा द्रव्य और भाव के भेद से वह दो प्रकार का ही अवस्थित है ।

त्याग योग्य विष मिश्रित घृत ज्यों त्यों ही मोह त्यागने योग्य ।
बिना मोह को जीते कोई हुआ नहीं शिव पथ में योग्य ॥

१३१ ॐ ह्रीं द्रव्यभावरूपध्येयविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।
चैतन्यचिन्हस्वरूपोऽहम् ।

नाम आदि से ध्येय चतुर्विधि बतलाए है आगम मे ।
द्रव्य मात्र से भेद मात्र दो दर्शाए है आगम मे ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१३१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१३२)

द्रव्य ध्येय और भाव ध्येय का स्वरूप

द्रव्य-ध्येय बहर्विस्तु चेतनाऽचेतनात्मकम् ।
भाव-ध्येयं पुनर्ध्येय-सन्निभ-ध्यानपर्ययः ॥१३२॥

अर्थ चेतन अचेतन रूप जो बाह्य वस्तु है वह सब द्रव्य ध्येय के रूप मे अवस्थित है और जो ध्येय के सदृश ध्यान का पर्याय है ध्यानारूढ आत्मा का ध्येय सदृश परिणमन है वह भाव ध्येय के रूप मे परिगृहीत है ।

१३२ ॐ ह्री ध्येयसदृशध्यानपर्यायविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।
प्रशान्तोऽहम् ।

द्रव्य ध्येय तो बहिर्वस्तु है चेतन तथा अचेतन रूप ।
भाव ध्येय है सर्व ध्यान पर्यायो का जो ग्रहण अनूप ॥
ध्याता करता ध्येय सहज परिगमन ध्येय करके धारण ।
तप वत क्रिया रूप हो जाता वह समर्थ होता धन धन ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१३२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१३३)

द्रव्य ध्येय के स्वरूप का स्पष्टीकरण

मोहासक्त दशा में जीवन सतत दुखमयी होता है ।
मोह विहीन जीव का जीवन सतत सुखमयी होता है ॥

ध्याने हि बिभ्रति स्थैर्यं ध्येय रूपं परिस्फुटम् ।
आलेखितमिवाऽऽभाति ध्येयस्याऽऽसन्निधावपि ॥१३३॥

अर्थ ध्यान मे स्थिरता के परिपुष्ट हो जाने पर ध्येय का स्वरूप ध्येय के सन्निकट न होते हुए भी स्पष्ट रूप से आलेखित जैसा प्रातिभासित होता है ऐसा मालूम होता है कि वह ध्याता आत्मा मे अकित है अथवा चित्रित हो रहा है ।

१३३ ॐ ह्री ध्यानस्थैर्यविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सदानिश्चलोऽहम् ।

सुथिर ध्यान मे होता है परिपुष्ट जानकर ध्यान स्वरूप ।
ध्येय सन्निकट ना हो तब भी आलेखित प्रतिभास अनूप ॥
ऐसा लगता ध्याता आत्मा मे अकित या चित्रित है ।
मानो आत्मा मे उत्कीर्णित तथा प्रतिष्ठित निश्चित है ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१३३॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१३४)

द्रव्य ध्येय को पिण्डस्थध्येय की सज्ञा

ध्यातु: पिण्डे स्थितश्चैव ध्येयोऽर्थो ध्यायते यत: ।
ध्येयं पिण्डस्थमित्याहुरतएव च केचन ॥१३४॥

अर्थ ध्येय पदार्थ चूँकि ध्याता के शरीर मे स्थित रूप से ही ध्यान का विषय किया जाता है इसलिये कुछ आचार्य उसे पिण्डस्थ ध्येय कहते है ।

१३४ ॐ ह्रीं पिण्डस्थध्यानविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजगुणपिण्डस्वरूपोऽहम् ।

ध्येय पदार्थ जु ध्याता के तन में जैसे सुस्थित होता ।
यही ध्यान का विषय कहाता यह पिंडस्थ ध्येय होता ॥

मोहासक्ति बिसंवादो को वृद्धिंगत करती रहती ।
मोहासक्त जीव की मति भी भवदधि में बहती रहती ॥

ज्ञानार्णव आदिक ग्रंथों में हैं पिन्डस्थ ध्यान के भेद ।
पांच धारणाएँ बतलाई किन्तु ध्यान तो एक अभेद ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१३४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१३५)

भाव ध्येय का स्पष्टीकरम

यदा ध्यान-बलाद्ध्याता शून्यीकृत्य स्वविग्रहम् ।
ध्येयस्वरूपाविष्टत्वात्तादृक् सम्पद्यते स्वयम् ॥१३५॥

अर्थ- जिस समय ध्याता ध्यान के बल से अपने शरीर को शून्य बनाकर ध्येयस्वरूप में आविष्ट प्रविष्ट हो जाने से अपने को तत्सदृश बना लेता है उस समय उस प्रकार की ध्यान सवित्ति से भेद विकल्प को नष्ट करता हुआ वह परमात्मा गरुड अथवा काम देव हो जाता है परमात्म स्वरूप को ध्यानाविष्ट करने से परमात्मा गरुड रूप को ध्यानाविष्ट करने से गरुड और कामदेव के स्वरूप को ध्यानाविष्ट करने से कामदेव बन जाता है।

१३५ ॐ ह्री चिन्मयवपुरात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चिन्मात्रोऽहम् ।

ध्याता ध्यान मात्र से अपने तन को शून्य बनाता है ।
ध्येय रूप में प्रविष्ट करता तत्सदृश्य हो जाता है ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१३५॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१३६)

वही कहते है

तदा तथाविध-ध्यान-संवित्ति-ध्वस्तकल्पनः ।
स एव परमात्मा स्याद्वैनतेयश्च मन्मथः ॥१३६॥

भव सागर भंवरों में जो डूबा वह उतराएगा क्या ।
यदि उतराया तो सद्गुरु बिन सम्यक् पथ पाएगा क्या॥

इस गाथा का अर्थ गाथा नं. १३५ में देखें ।

१३६. ॐ ह्रीं भेदकल्पनारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नमः ।

आत्मदेवस्वरूपोऽहम् ।

भेद विकल्प नष्ट करता है शुद्ध ध्यान संविति प्रताप ।
वह परमात्मा गरूड रुप या कामदेव बन जाता आप ॥
जैसा होता ध्येय ध्यानमय वैसा ध्याता बन जाता ।
भाव ध्येय का सार यही है तत्सम ही वह हो जाता ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१३६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१३७)

समरसीभाव और समाधि का स्वरूप

सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं स्मृतम् ।
एतदेव समाधिः स्याल्लोक-द्वय-फल-प्रदः ॥१३७॥

अर्थ- उन दोनो ध्येय और ध्याता का जो यह एकीकरण है वह समरसीभाव माना गया है यही एकीकरण समाधि रूप ध्यान है जो इन दोनो लोक के फल को प्रदान करने वाला है।

१३७ ॐ ह्रीं समरसीभावविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नमः ।

साम्यस्वरूपोऽहम् ।

ध्येय और ध्याता का एकीकरण भाव समरसी महान ।
शुद्ध समाधि रूप ध्यान ही इह भव परभाव में सुखयान ॥
भाव ध्येय वह जिसमें ध्याता ध्येय लीन हो जाता है ।
निज तद्रूप क्रिया करता है, समभावी कहलाता है ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१३७॥

पुत्र कमाई करने वाला सब को ही प्रिय लगता है ।
पुत्र निकम्मा होता है तो सबको अप्रिय लगता है ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१३८)

द्विविध ध्येय के कथन का उपसहार

किमत्र बहुनोक्तेन ज्ञात्वा श्रद्धाय तत्त्वतः ।
ध्येयं समस्तमप्येतन्माध्यस्थ्यं तत्र बिभ्रता ॥१३८॥

अर्थ इस विषय मे बहुत कहने से क्या? इस समस्त ध्येय का स्वरूप वस्तुत जानकर तथा श्रद्धान कर उसमे मध्यस्थता वीतरागता धारण करने वाले को उसे अपने ध्यान का विषय बनाना चाहिए ।

१३८ ॐ ह्री माध्यस्थभावविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

समृद्धोऽहम् ।

बहुत क्या कहे ध्येय स्वरूप वस्तुत जान करो श्रद्धान ।
वीतराग बन माध्यस्थ हो करो आत्मा का ही ध्यान ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१३८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१३९)

माध्यस्थ्य के पर्याय नाम

माध्यस्थ्यं समतोपेक्षा वैराग्यं साम्यमस्पृहा ।
वैतृष्ण्यं प्रशमः शान्तिरित्येकार्थोऽभिधीयते ॥१३९॥

अर्थ- माध्यस्थ्य, समता, उपेक्षा, वैराग्य, साम्य, अस्पृहा, वैतृष्ण्य, (तृष्णा का अभाव) प्रशम, और शान्ति ये सब एक ही अर्थ को लिये हुए है ।

१३९ ॐ ह्रीं स्पृहारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

निरातङ्कोऽहम् ।

माध्यस्थ समता उपेक्षा साम्य वितृष्णा प्रशम वैराग्य ।
निस्पृह शान्ति अनेक नाम ये वस्तु एक की बहु पर्याय ॥

उसी भांति कल्याण हेतु सक्रिय प्राणी प्रिय लगता है ।
अकल्याण में जो उलझा है वह तो अप्रिय लगता है ॥

उदासीनता वीतरागता अनासक्ति लालसा विमुक्ति ।
राग द्वेष विरहित समभावी होना शुद्ध ध्यान की युक्ति ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१३९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१४०)

परमेष्ठियों के ध्याए जाने पर सब कुछ ध्यात

संक्षेपेण यदत्रोक्तं विस्तरात्परमागमे ।
तत्सर्वं ध्यातमेव स्याद् ध्यातेषु परमेष्ठिसु ॥१४०॥

अर्थ- यहाँ इस शास्त्र मे जो कुछ सक्षेप रूप से कहा गया है उसे परमागम मे विस्तार रूप से बतलाया है। पचपरमेष्ठियो के ध्याये जाने पर वह सब ही ध्यात रूप मे परिणत हो जाता है उसके पृथक् रूप से ध्यान की जरुरत नही रहती अथवा पच परमेष्ठियो का ध्यान कर लिए जाने पर सभी श्रेष्ठ व्यक्तियो एव वस्तुओं का ध्यान उसमे समाविष्ट हो जाता है ।

१४० ॐ ह्री परमेष्ठिध्यानविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नि:स्पृहस्वरूपोऽहम् ।

अरहतादिक पाचो परमेष्ठी का ध्यान महाविस्तीर्ण ।
प्रथक रूप से अन्य ध्यान की नही जरूरत ध्यान प्रवीण ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१४०॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१४१)

निश्चय ध्यान का निरूपण

व्यवहारनयादेवं ध्यानमुक्तं पराश्रयम् ।
निश्चयादधुना स्वात्मालम्बनं तन्निरूप्यते ॥१४१॥

जो परिजन में मोह मग्न हैं वे निजहित से कोसों दूर ।
जो उदास होते परिजन से वे सुख पाते हैं भरपूर ॥

अर्थ- इस प्रकार व्यवहारनय की दृष्टि से यह पराश्रित ध्यान कहा गया है। अब निश्चयनय की दृष्टि से जो स्वात्मालम्बन रूप ध्यान है उसका निरूपण किया जाता है ।

१४१ ॐ ह्रीं पराश्रयरूपध्यानरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

स्वयंज्योतिस्वरूपोऽहम् ।

है व्यवहार दृष्टि से यही पराश्रित ध्यान लोक सुखदाय ।
निश्चयनय से स्वावलबन रूप ध्यान ही शिव सुख दाय ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१४१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१४२)

वही कहते है

ब्रुवता ध्यान-शब्दार्थं यद्रहस्यमवादि तत् ।
तथापि स्पष्टमाख्यातु पुनरप्यभिधीयते ॥१४२॥

अर्थ- यद्यपि ध्यान शब्द के अर्थ को बतलाते हुए रहस्य की जो बात थी वह कही जा चुकी है तो भी स्पष्ट रूप व्याख्या की दृष्टि से उसे फिर से कहा जाता है ।

१४२ ॐ ह्रीं ध्यानरहस्यकथनरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

परमज्योतिस्वरूपोऽहम् ।

ध्यान शब्द का अर्थ बताया फिर भी और व्याख्या जान ।
पर का ध्यान न आवश्यक है जब हो निज का ध्यान महान॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१४२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१४३)

दिध्यासुः स्वं परं ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थितं ।
विहायाऽन्यदनर्थित्वात् स्वमेवाऽवैतु पश्यतु ॥१४३॥

आत्म ध्यान से मत घबराना यही पार ले जाएगा ।
यही सिद्ध पद का दाता है सर्व सौख्य दे जाएगा ॥

अर्थ-जो स्वावलम्बी निश्चय ध्यान करने का इच्छुक है वह स्व को और पर को यथावस्थित रूप मे जानकर तथा श्रद्धान कर और फिर पर को निरर्थक होने से छोडकर स्व को ही जानो और देखो ।

१४३ ॐ ह्रीं निरर्थकपरद्रव्यालबनरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नमः ।

निजाधीनचित्स्वरूपोऽहम् ।

निश्चय ध्यानेच्छुक का है कर्त्तव्य स्वावलंबी होना ।
स्व अरु पर को जान स्वय को ध्यान लीन निज में होना॥
फिर तुम पर को जान निरर्थक केवल निज आत्मा जानो।
केवल निज आत्मा को देखो दृढ श्रद्धान सहित मानो ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१४३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१४४)

पूर्वश्रुतेन संस्कारं स्वात्मन्यारोपयेत्ततः ।
तत्रैकाग्र्यं समासाद्य न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥१४४॥

अर्थ-अत पहले श्रुत (आगम) के द्वारा अपने आत्मा में आत्म सस्कार आरोपित करे आगम में आत्मा को जिस यथार्थ रूप मे वर्णित किया है उस प्रकार की भावनाओं द्वारा उसे सस्कारित करे तदनन्तर उस सस्कारित स्वात्मा में एकाग्रता प्राप्त करके और कुछ भी चिन्तन न करे ।

१४४ ॐ ह्रीं आत्मसस्कारकारणश्रुतविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञाननिधिस्वरूपोऽहम् ।

आगम द्वारा आत्मा में आरोपित करो आत्म संस्कार ।
संस्कारित स्वात्मा में हो एकाग्र करो मत अन्य विचार ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१४४॥

जब तक पर का ध्यान रहेगा तब तक कही होगा संसार।
जब निजात्म का ध्यान करोगे तब सुख होगा अपरम्पार॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१४५)

श्राती भावना का अवलम्बन न लेने से हानि

यस्तु नालम्बते श्रौतीं भावनां कल्पना-भयात् ।
सोऽवश्यं मुह्यति स्वस्मिन्बहिश्चिन्तां बिभर्ति च ॥१४५॥

अर्थ जो ध्याता कल्पना के भय से श्रौती भावना का आलम्बन नहीं लेता वह अवश्य अपने आत्म विषय मे मोह को प्राप्त होता है और बाह्य चिन्ता को धारण करता है।

१४५ ॐ ह्री बाहिश्चिन्तारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

भरितावस्थोऽहम् ।

जो ध्याता भय से स्वभाव निज का ना लेता आलबन ।
आत्म विषय तज मोह प्राप्त कर पर चिन्ता करता धारण॥
वह केवल दुख ही पाता है भ्रमता रहता है ससार ।
इधर उधर की बातो मे आ पाता है भव कष्ट अपार ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१४५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१४६)

श्रौती भावना की दृष्टि

तस्मान्मोह प्राहाणाय बहिश्चिन्ता-निवृत्तये ।
स्वात्मानं भावयेत्पूर्वमेकाग्र्यस्य च सिद्धये ॥१४६॥

अर्थ-अत मोह का विनाश करने बाह्य चिन्ता से निवृत्त होने और एकाग्रता की सिद्धि के लिये ध्याता पहले स्वात्मा को श्रौती भावना से भावे सस्कारित करे ।

१४६ ॐ ह्री निजनिर्मलात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

विमलोऽहम् ।

शुद्ध भावना अगर न होगी तो फिर कैसे होगा ध्यान ।
अगर शुद्ध भावना है तो होगा कभी नहीं कल्याण ॥

मोह नाश हित पर चिन्ता से निवृत्त हो निज ध्यान करो ।
तब होगी एकाग्र सिद्धि निज स्वात्मा का सस्कार करो ॥
श्रुतात्मक श्रौती सुभावना उत्तम संस्कारित करना ।
निर्विकल्प ध्यान करके ही निज समाधि उर में धरना ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१४६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१४७)

श्रौती भावना का रूप

तथा हिचेतनोऽसख्य-प्रदेशो मूर्तिवर्जित: ।
शुद्धात्मा सिद्ध-रूपोऽस्मि ज्ञान-दर्शन-लक्षण: ॥१४७॥

अर्थ १४७ श्रौती भावना इस प्रकार है, मै चेतन हूँ, असख्य प्रदेशी हूँ, मूर्तिरहित अमूर्तिक हूँ सिद्धसदृश शुद्धात्मा हूँ, और ज्ञान दर्शन लक्षण से युक्त हूँ ।

१४७ ॐ ह्रीं निजशुद्धात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अमूर्तचित्स्वरूपोऽहम् ।

मै चेतन हू अमूर्तिक हूँ शुद्ध असख्य प्रदेशी हूँ ।
सिद्ध रूप शुद्धात्मा पावन दर्शन ज्ञान स्ववेशी है ॥
यह श्रोती भावना सदा भाऊ मै निर्विकल्प होकर ।
दर्शन अरु ज्ञानोपयोग मे रहूं सदा जाग्रत होकर ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१४७॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१४८)

वही कहते हैं

द्रव्य भाव नो कर्म रहित शुद्धात्मा का है ध्यान करो ।
दर्शन ज्ञान अनत गुणमयी निज स्वरूप का ज्ञान करो ॥

नाऽन्योऽस्मि नाहमस्त्यन्यो नाऽन्यस्याऽहं न मे परः ।
अन्यस्तत्वन्योऽहमेवाऽहमन्योऽन्यस्याऽहमेव में ॥१४८॥

अर्थ- मैं अन्य नहीं हूँ अन्य मे (आत्मा) नहीं है। मै अन्य का नहीं न अन्य मेरा है। वस्तुत अन्य अन्य है मैं ही मैं हूँ अन्य अन्य का है और मै ही मेरा हूँ ।

१४८. ॐ ह्रीं परद्रव्यस्वामित्वरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजपरमेश्वरस्वरूपोऽहम् ।

नहीं अन्य का अन्य न मेरा अन्य अन्य का ना मेरा ।
अन्य अन्य है मै ही मैं हूँ केवल मै ही हूँ मेरा ॥
पर पदार्थ मुझ रूप नहीं हैं मै भी ना पर पदार्थ रूप ।
पर से कुछ सबध नहीं है मेरा तो अनन्य निज रूप ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करूं आत्मा का कल्याण ॥१४८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१४९)

वही कहते है

अन्यच्छरीरमन्योऽहं चिदहं तदचेतनम् ।
अनेकमेतदेकोऽहं क्षयीदमहमक्षयः ॥१४९॥

अर्थ- शरीर अन्य है मैं अन्य हूँ, मै (क्योकि) चेतन हूँ, शरीर अचेतन है, यह शरीर अनेक रूप है, मै एक रूप हूँ, यह क्षयी है मै अक्षय हू ।

१४९ ॐ ह्रीं क्षयस्वरूपपरद्रव्यरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

चिदहम् ।

मै चेतन हूँ देह अचेतन देह अन्य है मै हू अन्य ।
मैं हूँ एक शाश्वत अक्षय देह अनेक विनश्वर अन्य ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन में ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१४९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

मिथ्यादृष्टि जीव को भी होती है बहु निर्जरा महान ।
जब समकित सन्मुख होता है शिवपथ पर करता अभियान ॥

(१५०)

वही कहते हैं

अचेतनं भवेन्नाऽहं नाऽहमप्यस्म्यचेतनम् ।
ज्ञानात्माऽहं न मे कश्चिन्नाऽहमन्यस्य कस्यचित् ॥१५०॥

अर्थ- अचेतन मैं (आत्मा) नही होता, न मै अचेतन होता हूँ, मै ज्ञान स्वरूप हूं, मेरा कोई नही है न मैं किसी दूसरे का हूँ ।

१५० ॐ ह्रीं अचेतनत्वरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानामृतोऽहम् ।

नहीं आत्मा कभी अचेतन नहीं अचेतन मै होता ।
ज्ञान स्वरूपी महिमाशाली मै पर रूप नहीं होता ॥
मेरा कोई नहीं कभी भी मैं न दूसरे का किंचित ।
नहीं दूसरा मेरा होता यह यथार्थ है ध्रुव निश्चित ॥
रहूँ तत्त्व अनुशासन मे ही ऐसा ही दो प्रभु वरदान ।
ध्रुव स्वरूप का चिन्तन करके करू आत्मा का कल्याण ॥१५०॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१५१)

वही कहते है

योऽत्र स्व-स्वामि-सम्बन्धो ममाऽभूद्वपुषा सह ।
यस्त्वेकत्व-भ्रमस्सोऽपि परस्मान्न स्वरूपतः ॥१५१॥

अर्थ- इस ससार में मेरा शरीर के साथ जो स्वस्वामि सम्बन्ध हुआ है शरीर मेरा स्व और मैं उसका स्वामी बना हूँ, तथा दोनों में एकत्व का जो भ्रम है वह सब भी पर के निमित्त से है, स्वरूप से नहीं ।

१५२ ॐ ह्रीं परद्रव्यविषयैकत्वभ्रमरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नमः ।

एकत्वचित्स्वरूपोऽहम् ।

गमन आगमन देख जीव का दया भाव उर में करना।
जीवों की रक्षा का भाव हृदय मे तुम पूरा धरना ॥

मेरा तन से जो स्वस्वामि सबध हुआ वह है व्यवहार ।
दोनों मे एकत्व रूप का जो भ्रम है वह ही ससार ॥
पर निमित्त के कारण ही सबंध कहा जाता मेरा ।
निज निश्चय स्वरूप से तो सबध नही कुछ भी मेरा ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१५१॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१५२)

वही कहते है

जीवादि-द्रव्य-यथात्म्य ज्ञानात्मकमिहाऽत्मना ।
पश्यन्नात्मन्यथाऽत्मानमुदासीनोऽस्मि वस्तुषु ॥१५२॥

अर्थ- मै इस ससार मे जीवादि । द्रव्यो की यथार्थता के ज्ञान स्वरूप आत्मा को आत्मा के द्वारा आत्मा मे देखता हुआ (अन्य) वस्तुओ मे उदासीन रहता हू, उनमे मेरा कोई प्रकार का रागादिक भाव नही है ।

१५२ ॐ ह्रीं परप्रयोजनरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

बोधपीयूषस्वरूपोऽहम् ।

मै आत्मा को आत्मा मे आत्मा के द्वारा देख रहा ।
पर से उदासीन रहता है पर मे राग न शेष रहा ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१५२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१५३)

वही कहते हैं

सद्द्रव्यमस्मि चिदहं दृष्टा सदाऽप्युदासीनः ।
स्वोपात्त देहमात्रस्ततः परं गगनवदमूर्त्तः ॥१५३॥

महावीर की प्रासंगिता जो पहिले थी अब भी है ।
उन जैसों की आवश्यकता जो पहिले थी अब भी है ॥

अर्थ- मैं सदा सत् द्रव्य हू चिद्रूप हूँ ज्ञाता दृष्टा हूं उदासीन हूँ स्वग्रहीत देह परिमाण हूं और शरीर त्याग के पश्चात् आकाश के समान अमूर्त्तिक हू ।

१५३ ॐ ह्रीं ज्ञायकानन्दात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सद्‌द्रव्यस्वरूपोऽहम् ।

मैं तो द्रव्य सदा सत हूँ चिद्रूपी उदासीन भावी ।
ज्ञाता दृष्टा अमूर्त्तिक हूँ देह प्रमाण ज्ञान भावी ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१५३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१५४)

वही कहते है

सन्नेवाऽहं सदाऽप्यस्मि स्वरूपादि-चतुष्टयात् ।
असन्नेवाऽस्मि चात्यन्तं पररूपाद्यपेक्षया ॥१५४॥

अर्थ- स्वरूपादि चतुष्टय को दृष्टि से स्वद्रव्य स्वक्षेत्र, स्वकाल, और स्वभाव की अपेक्षा से मै सदा सत्‌रूप ही हूँ और पर स्वरूपादिकी दृष्टि से परद्रव्य परक्षेत्र, परकाल और परभाव की अपेक्षा से अत्यन्त असत्‌रूप ही हूँ ।

१५४ ॐ ह्रीं पररूपरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजरूपोऽहम् ।

स्वरूपादि स्व चतुष्टय से मै सदा शाश्वत सत् रूपी ।
पर स्वरूप से असत् रूप हूँ मै ध्रुव चेतन चिद्रूपी ॥
पर से नास्ति स्वयं से अस्ति यही तो मेरा शुद्ध स्वरूप ।
पर रूपादि चतुष्टय पर का पर से भिन्न शुद्ध चिद्रूप ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१५४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

भौतिक सुख में पलने वाले जब नश्वरता लेते जान ।
सांसारिकता तज देते हैं करते हैं अपना कल्याण ॥

(१५५)

वही कहते है

यन्न चेतयते किंचन्नाऽचेतयत् किंचन ।
यच्चेतयिष्यते नैव तच्छरीरादि नाऽस्म्यहम् ॥१५५॥

अर्थ- जो कुछ चेतता-जानता नही जिसने कुछ चेता-जाना नही और जो कुछ चेतेगा-जानेगा नही वह शरीरादिक मै नही हूँ ।

१५५ ॐ ह्री अज्ञानरूपशरीरादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ब्रह्मविग्रहस्वरूपोऽहम् ।

जो न चेतता नहीं जानता अरु चेता जाना न कभी ।
ना चेतेगा ना जानेगा वह शरीर मै नहीं कभी ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१५५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१५६)

वही कहते है

यदचेतत्तथा पूर्व चेतिष्यति यदन्यथा ।
चेततीत्थं यदत्राऽद्य तच्चिद्द्रव्यं समस्म्यहम् ।१५६॥

अर्थ- जिसने पहले उस प्रकार से चेता जाना है जो अन्य प्रकार से चेतेगा जानेगा और जो आज यहाँ इस प्रकार से चेतता जानता है वह सम्यक् चेतनात्मक द्रव्य मै हूँ ।

१५६ ॐ ह्रीं शाश्वतनिजचिद्द्रव्यात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ब्रह्मानंदोऽहम् ।

पहिले जिसने चेता जाना अरु भविष्य मै जानेगा ।
वर्त्तमान मे चेत रहा है जान रहा है जानेगा ॥
वह सम्यक् चेतन स्वद्रव्य मे जान रहा है चेत रहा ।
चित् स्वरूप की दृष्टि सतत चिद्रूप हृदय में लेख रहा ॥

जब तक देहासक्ति तभी तक जीवन होता व्यर्थ व्यतीत।
जब आसक्ति नष्ट हो जाती तब हो जाता देहातीत ॥

यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१५६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१५७)

वही कहते है

स्वयमिष्टं न च द्विष्टं किन्तूपेक्ष्यमिदं जगत् ।
नाऽहमेष्टा न चद्वेष्टा किन्तु स्वयमुपेक्षिता ॥१५७॥

अर्थ- यह दृश्य जगत् न तो स्वय-स्वभाव से-इष्ट है-इच्छा तथा राग का विषय है, न द्विष्ट है-अनिष्ट अथवा द्वेषक विषय है-किन्तु उपेक्ष्य है । उपेक्षा का विषय है। मैं स्वयं स्वभाव से एष्टा इच्छा तथा-राग करने वाला। नही हू। न द्वेष्टा द्वेष तथा अप्रीति करनेवाला हू । किन्तु उपेक्षिता हूँ उपेक्षा करने वाला समवृत्ति हू ।

१५७ ॐ ह्री इष्टानिष्टभावरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

विरागानंदोऽहम् ।

दृश्य जगत यह नहीं इष्ट है नही राग का विषय मुझे ।
दृश्य जगत यह नही द्विष्ट है नही द्वेष का विषय मुझे ॥
किन्तु मुझे तो यह उपेक्ष्य है विषय उपेक्षा का प्रतिफल ।
मै स्वभाव से नहीं एष्टा नही राग इच्छा का बल ॥
मै स्वभाव से नहीं द्वेष्टा किन्तु उपेक्षित सदा प्रबल ।
इष्ट अनिष्ट न राग द्वेष है साम्य भाव वाला हू मै ॥
आत्म धर्म से ओत प्रोत हूँ ज्ञान भाव वाला हूँ मै ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१५७॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१५८)

वही कहते हैं

ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय के सभी विकल्पों का भी करो अभाव ।
ध्यान ध्येय ध्याता विकल्प भी बाधक, साधक शुद्ध स्वभाव ॥

मत्तः कायादयो भिन्नास्तेभ्योऽहमपि तत्त्वतः ।
नाऽहमेषां किमप्यस्मि ममाऽप्येते न किंचन ॥१५८॥

अर्थ वस्तुत ये शरीरादिक मुझसे भिन्न है, मै भी इनसे भिन्न हूं, मै इन शरीरादिक का कुछ भी नहीं हू, और न ये मेरे कुछ होते है ।

१५८ ॐ ह्री कायादिभावरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चित्कायस्वरूपोऽहम् ।

सच तो यह है शरीरादि मुझसे है भिन्न सदैव त्रिकाल ।
मै भी इनसे भिन्न सदा हू ना इनका मै कभी त्रिकाल ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१५८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१५९)

श्रौती भावना का उपसहार

एवं सम्यग्विनिश्चित्य स्वात्मानं भिन्नमन्यतः ।
विधाय तन्मयं भावं न किंचिदपि चिंतयेत् ॥१५९॥

अर्थ- इस प्रकार (भावनाकार) अपने आत्मा को अन्य शरीरादिक से स्तुत भिन्न निश्चित करके और उसमे तन्मय होकर अन्य कुछ भी चिन्तन नही करे ।

१५९ ॐ ह्री अन्यशरीरादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

स्वसत्स्वरूपोऽहम् ।

हित इच्छुक भावनाकार श्रौती भावना सतत भाता ।
शरीरादि से भिन्न स्वय ही निज मे तन्मय हो जाता ॥
नहीं अन्य चिन्तन कुछ करता हो जाता निज में ही लीन ।
पर पदार्थ की चिन्ता तजकर हो जाता है आत्म प्रवीण ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१५९॥

अन्तर्जल्प अगर क्षय हों तो फिर विकल्प का क्या है काम।
सबसंकल्प विकल्प रहित है शुद्ध आत्मा का ध्रुवधाम ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६०)

चिन्ता का अभाव तुच्छ न होकर स्वसवेदन रूप है

चिन्ताऽभावो न जैनानां तुच्छो मिथ्यादृशामिव ।
दृग्बोध साम्य रूपस्य स्वस्य संवेदनं हि सः ॥१६०॥

अर्थ- चिन्ता का अभाव जैनियो के (मत मे) मिथ्यादृष्टियो के समान तुच्छ अभाव नहीं है क्योकि चिन्ता का अभाव वस्तुत दर्शन ज्ञान और समतारूप आत्मा के संवेदन रूप है ।

१६० ॐ ह्री तुच्छाभावरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजज्ञानेश्वरस्वरूपोऽहम् ।

जो स्वभाव है वस्तु धर्म है जिनदर्शन ने जाना है ।
पर अभाव भी वस्तु धर्म है जिनदर्शन ने माना है ॥
मिथ्यादृष्टी नही मानता वस्तु धर्म ना जाना है ।
उसने तो केवल मिथ्याभ्रम को ही अपना माना है ॥
चिन्ता का अभाव वस्तुत दर्शन ज्ञान और समता ।
है सवेदन रूप आत्मा का न कही पर मे ममता ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१६०॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१६१)

स्वसवेदन का लक्षण

वेद्यत्वं वेदकत्वं च यत्स्वस्य स्वेन योगिनः ।
तत्स्व संवेदनं प्राहुरात्मनोऽनुभवं दृशम् ॥१६१॥

अर्थ- योगी के अपने आत्मा का जो अपने द्वारा वद्यपना और वेदकपना है उसको स्वसंवेदन कहते है, जो कि आत्मा का दर्शन रूप अनुभव है ।

संयम की मर्यादा करके भंग, नहीं सुख पाओगे ।
संयम को बदनाम करोगे घोर महादुख पाओगे ॥

१६१ ॐ ह्रीं वेद्यवेदकत्वविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चिदीश्वरस्वरूपोऽहम् ।

योगी को अपने आत्मा का अपने द्वारा वेद्यपना ।
अरु है वेदकपना उसी को जो है सवेदन स्व पना ॥
यह आत्मा का दर्शन रूप स्व अनुभव जानो भली प्रकार ।
स्वय जानना स्वय देखना तथा स्वानुभव एक प्रकार ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१६१॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१६२)

स्वसवेदन का कोई करणान्तर नहीं होता

स्वपर- ज्ञप्तिरुपत्वान्न सत्य करणान्तरम् ।
ततश्चिन्ता परित्यज्य स्वसंवित्यैव वेद्यताम् ॥१६२॥

अर्थ- स्व-पर की जानकारी रूप होने से उस स्वसवेदन अथवा स्वानुभव का आत्मा से भिन्न कोई दूसरा करण-ज्ञप्तिक्रिया की निष्पत्ति मे साधकतम-नहीं होता। अत चिन्ता का परित्याग कर स्वसवित्ति के द्वारा ही उसे जानना चाहिये ।

१६२ ॐ ह्री करणान्तररहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानमंदिरस्वरूपोऽहम् ।

शुद्ध स्वानुभव का आत्मा से भिन्न कोई और कारण ।
सदा स्व पर की सतत जानकारी होने से यही करण ॥
ज्ञप्ति क्रिया की निष्पत्ति मे नहीं दूसरा करण कहीं ।
स्व सवित्ति से भिन्न जु चिन्ता का परित्याग है ज्ञप्ति सही॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१६२॥

श्रमणोपासक बनना है तो श्रमणों की पहचान करो ।
सच्चे श्रावक बनो मूलगुण पालो निज श्रद्धान करो ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१६३)

स्वात्मा के द्वारा सवेद्य आत्म स्वरूप

दृघबोध-साम्यरूपत्वाज्जानन्पश्यन्नु दासिता ।
चित्सामान्य-विशेषात्मा स्वात्मनैवाऽनुभूयताम् ॥१६३॥

अर्थ- दर्शन ज्ञान और समता रूप होने से देखता जानता और वीतरागता को धारण करता हुआ जो सामान्य विशेष ज्ञान रूप अथवा ज्ञान दर्शनात्मक उपयोग रूप आत्मा है उसे स्वात्मा के द्वारा ही अनुभव करना चाहिये ।

१६३ ॐ ह्रीं दृग्बोधसाम्यरूपात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चिन्मंगलोऽहम् ।

दर्शन ज्ञान तथा समता युत देखो जानो पहचानो ।
वीतरागता को धारण कर शुद्ध आत्मा को जानो ॥
दर्शन ज्ञानात्मक उपयोग रूप आत्मा का अनुभव ।
करना ही सबसे उत्तम है अत करो निज का अनुभव ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१६३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१६४)

वही कहते हिं

कर्मजेभ्यः समस्तेभ्यो भावेभ्यो भिन्नमन्वहम् ।
ज्ञस्वभावमुदासीनं पश्येदात्मानमात्मना ॥१६४॥

अर्थ- समस्त कर्मज भावों से सदा भिन्न ऐसे ज्ञानस्वभाव एव उदासीन (वीतराग) आत्मा को आत्मा के द्वारा देखना चाहये ।

१६४ ॐ ह्रीं कर्मजभावरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नीरजोऽहम् ।

मार्ग पाया है तो अपने ध्येय को मत भूलना ।
पुण्य भावों में न फँसना अरु न पर में झूलना ॥

अत सभी कर्म भावों से भिन्न आत्मा को जानो ।
ज्ञान स्वभावी वीतराग बन निज आत्मा को पहचानो ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१६४॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१६५)

वही कहते है

यज्मिथ्याभिनिवेशेन मिथ्याज्ञानेन चोज्झितम् ।
तन्मध्यस्थं निजं रूपं स्वस्मिन्संवेद्यतां स्वयम् ॥१६५॥

अर्थ- जो मिथ्याश्रद्धान तथा मिथ्याज्ञान से रहित है और राग द्वेष से रहित मध्यस्थ है उस निज रूप को स्वय अपने आत्मा मे अनुभव करना चाहिये ।

१६५ ॐ ह्रीं मिथ्याश्रद्धानादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सहजब्रह्मस्वरूपोऽहम् ।

जो भी मिथ्या श्रद्धा मिथ्या ज्ञान रहित हो जाता है ।
राग द्वेष से रहित पूर्ण मध्यस्थ भाव उर लाता है ॥
निज स्वरूप को स्व में आत्मा में अनुभव करके जानो ।
वीतरागतामय स्वभाव निज स्वय स्वात्मा में जानो ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१६५॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१६६)

इन्द्रिय ज्ञान तथा मन के द्वारा आत्मा दृश्य नहीं

न हीन्द्रियधिया दृश्यं रूपादिरहितत्वत: ।
वितर्कासस्तत्र पश्यन्ति ते ह्यविस्पष्ट-तर्कणा ॥१६६॥

समवाय पांचों निकट आए काललब्धि तुम्हें मिली ।
मात्र समकित प्राप्त करके यहीं परमत फूलना ॥

अर्थ- रूपादि से रहित होने के कारण वह आत्म रूप इन्द्रिय ज्ञान से दिखाई देने वाला नही है तर्क करने वाले उसे देखते नहीं । वे अपनी तर्कणा मे विशेष रूप से स्पष्ट नही हो पाते-उनके तर्क अस्पष्ट बने रहते हैं ।

१६६. ॐ ह्रीं इन्द्रियज्ञानदृश्यरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

नित्यशिवोऽहम् ।

रूपादिक से रहित आत्मा इन्द्रिय ज्ञानातीत सदा ।
तर्क वितर्क व्यर्थ है सारे वे न देखते उन्हें कदा ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१६६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१६७)

इन्द्रिय मन का व्यापार रुकने पर स्वसवित्ति द्वारा आत्म दर्शन

उभयस्मिन्निरुद्धे तु स्याद्विस्पष्टमतीन्द्रियम् ।
स्वसंवेद्य हि तद्रूपं स्वसंवित्यैव दृश्यताम् ॥१६७॥

अर्थ- इन्द्रिय और मन दोनो के निरुद्ध होने पर अतीन्द्रिय ज्ञान विशेष रूप से स्पष्ट होता है अत अपना वह रूप जो स्वसवेदन के गोचर है उसे स्वसवेदन के द्वारा ही देखना चाहिये।

१६७ ॐ ह्रीं इन्द्रियमनोनिरोधविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

अकामस्वरूपोऽहम् ।

इन्द्रिय. अरु मन दोनों के निरुद्ध होने पर होता ज्ञान ।
यही अतीन्द्रिय ज्ञान सदा स्पष्ट और है सम्यक् ज्ञान ॥
अत स्वसंवेदन गोचर है उसे स्वसंवेदन से लो जान ।
स्व सवेद्य है उसे स्वानुभव से जानो कर सम्यक् ज्ञान ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१६७॥

राग हो बाधक अगर तो कुचल देना तुम उन्हें ।
उपसर्ग परिषह जीत लेना व्यर्थ ही मत कूलना ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१६८)

स्वसविति का स्पष्टीकरण

वपुषोऽप्रतिभासेऽपि स्वातन्त्र्येन चकासती ।
चेतना ज्ञान रूपेयं स्वयं दृश्यत एव हि ॥१६८॥

अर्थ- स्वतन्त्रता से चमकती हुई यह ज्ञान रूपा चेतना शरीर रूप से प्रतिभासित न होने पर भी स्वय ही दिखाई पडती है ।

१६८ ॐ ह्री वपुप्रतिभासरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चित्तेजस्वरूपोऽहम् ।

स्वतत्रता से चमक रही है ज्ञानरूप चेतना महान ।
नही देह से प्रतिभासित होती है होती स्वय प्रधान ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१६८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१६९)

समाधि मे आत्मा को ज्ञान स्वरूप अनुभव न करने वाला योगी आत्म ध्यानी नही

समाधिस्थेन यद्यात्मा बोधात्मा नाऽनुभूयते ।
तदा न तस्य तद्ध्यानं मूर्च्छावन्मोह एव सः ॥१६९॥

अर्थ- समाधि में स्थित योगी यदि आत्मा को ज्ञान स्वरूप अनुभव नही करता तो समझना चाहिये उस समय उसके आत्म ध्यान नहीं किन्तु मूर्च्छावाला मोह ही है ।

१६९ ॐ ह्रीं मूर्च्छाविन्मोहरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अनघस्वरूपोऽहम् ।

समाधिस्थ को यदि आत्मा का अनुभव ना हो ज्ञान स्वरूप।
तो समझो ना आत्म ध्यान है वह है मूर्छा मोह स्वरूप ॥

निष्कषायी हृदय द्वारा कषायों को उड़ाना ।
देखना अब रहे कोई कहीं इनकी धूलना ॥

यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१६९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१७०)

आत्मानुभव का फल

तमेवानुभवश्चायमेकाग्रयं परमृच्छति ।
तथाऽऽत्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरम् ॥१७०॥

अर्थ- उस ज्ञान स्वरूप आत्मा को अनुभव मे लाता हुआ यह समाधिस्थ योगी परम एकाग्रता को प्राप्त होता है तथा उस स्वाधीन आनन्द का अनुभव करता है जो कि वचन के अगोचर है ।

१७० ॐ ह्रीं आत्माधीनात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अतुलोऽहम् ।

समाधिस्थ अनुभव में लाता ज्ञान स्वरूप आत्मा को ।
एकाग्रता परम पाता है अनुभव करता आत्मा को ॥
वचन अगोचर आत्मीय आनद प्राप्त करता है जो ।
उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है अति सुख में है वो॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१७०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१७१)

स्वरूपनिष्ठ योगी एकाग्रता को नहीं छोड़ता

यथा निर्वात-देशस्थः प्रदीपो न प्रकम्पते ।
तथा स्वरूप निष्ठोऽयं योगी नैकाग्र्यमुज्झति ॥१७१॥

अर्थ- जिस प्रकार पवन रहित स्थान में दीपक नहीं काँपता उसी प्रकार अपने स्वरूप में स्थित योगी एकाग्रता को नहीं छोडता ।

बध का ही घोर कारण घोर तम मिथ्यात्व है ।
जगाना पुरुषार्थ अपना रहे इसकी धूलना ॥

१७१ ॐ ह्रीं निरापदशिवनिवासात्मतत्त्वस्वरूपाय नमः ।

बोधधामस्वरूपोऽहम् ।

पवन रहित थल पर ज्यो दीपक पल भर भी कापता नही।
त्यों स्वरूप मे सुस्थित योगी तजता एकाग्रता नहीं ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१७१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१७२)

स्वात्मलीन योगी को बाह्य पदार्थो का कुछ भी प्रतिभास नही होता

तदा च परमैकाग्र्याद्बहिरर्थेषु सत्स्वपि ।
अन्यत्र किंचनाऽऽभाति स्वमेवात्मन पश्यतः ॥१७२॥

अर्थ- उस समाधिकाल मे स्वात्मा मे देखने वाले योगी की परम एकाग्रता के कारण बाह्य पदार्थो के विद्यमान होते हुए भी उसे आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी प्रतिभासित नही होता ।

१७२ ॐ ह्रीं स्वात्मानदनिवासात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चैतन्यनिवासस्वरूपोऽहम् ।

समाधि काल मे योगी स्वात्मा मे एकाग्र सदा रहता ।
नहीं आत्मा के अतिरिक्त उसे कुछ प्रतिभासित होता ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१७२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(१७३)

अन्य शून्य भी आत्मा स्वरूप से शून्य नहीं होता

अत एवाऽन्य शून्योऽपि नाऽऽत्मा शून्यः स्वरूपतः ।
शून्याऽशून्यस्वभावोऽयमात्मनैवपलभ्यते ॥१७३॥

दोष शंकादिक मिटाना एक हो न अनायतन ।
देखना छुप करके बैठ कहीं भीतर शूलना ॥

अर्थ- इसीलिये अन्य बाह्य पदार्थों से शून्य होता हुआ भी आत्मा स्वरूप से शून्य नहीं होता अपने निज रूप को साथ मे लिये रहता है। आत्मा का यह शून्यता और अशून्यतामय स्वभाव आत्मा के द्वारा ही उपलब्ध होता है दूसरे किसी बाह्य पदार्थ के द्वारा नहीं ।

१७३ ॐ ह्री परपदार्थशून्यात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजचैतन्यसंपन्नोऽहम् ।

इसीलिए तो बाह्य पदार्थो से निजात्म शून्य होता ।
किन्तु आत्मा निज स्वरूप से शून्य न कभी अरे होता ॥
आत्म स्वभाव आत्मा के द्वारा ही होता है उपलब्ध ।
किन्ही दूसरे बाह्य पदार्थो से होता न कभी उपलब्ध ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१७३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१७४)

मुक्ति के लिये नैरात्म्याद्वैत दर्शन की उक्ति का स्पष्टीकरण

ततश्च यज्जगुर्मुक्त्यै नैरात्म्याऽद्वैत-दर्शनम् ।
तदेतदेव यत्सम्यगन्याऽपोढाऽऽत्मदर्शनम् ॥१७४॥

अर्थ- और इसलिये मुक्ति की प्राप्ति के अर्थ जो नैरात्म्य अद्वैत दर्शन की बात कही गई है वह यही है जो कि अन्य के आभास से रहित सम्यक् आत्म दर्शन के रूप है ।

१७४ ॐ ह्रीं ज्ञानामात्रात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चित्सौंदर्यस्वरूपोऽहम् ।

भिन्न स्वभाव लिए पदार्थ सब सदा परस्पर मे आवृत्त ।
एक दूसरे के स्वरूप मे ना प्रविष्ट होते निश्चित ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१७४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

दया रहित जिसका जीवन है वह मानव ही राक्षस है ।
दया भाव जिसके जीवन मे वह सुधर्म के ही वश हैं ॥

(१७५)

वही कहते है

परस्पर परावृत्ताः सर्वे भावाः कथंचन ।
नैरात्म्यं जगतो यद्वन्नैर्जगत्यं तथाऽऽत्मनः ॥१७५॥

अर्थ सर्व पदार्थ कथचित् परस्पर परावृत्त हैं एक दूसरने पृथक्त्व लिए हुए आवृत्त हैं। जिस प्रकार देहादिक रूप जगत के नैरात्मा आत्म रहितता है उसी प्रकार आत्मा के नैर्जगतता जगत से रहितता है। कोई भी एक दूसरे स्वरूप मे प्रविष्ट होकर तद्रूप नहीं हो जाता ।

१७५ ॐ ह्री जगद्रूपरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चिद्रूपोऽहम् ।

अन्य आत्मा के अभाव का रूप सदा नैरात्म्य प्रसिद्ध ।
स्वात्मा की सत्ता स्वात्म का दर्शन ही नैरात्म्य सुसिद्धि ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१७५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१७६)

वही कहते है

अन्यात्माऽभाव नैरात्म्यं स्वात्म-सत्तात्मकश्च सः ।
स्वात्म दर्शनमेवातः सम्यग्नैरात्म्य-दर्शनम् ॥१७६॥

अर्थ- अन्य आत्म रूप के अभावा का नाम नैरात्म्य है और वह स्वात्मा की सत्ता को लिये हुए है। अत स्वात्मा के दर्शन का नाम ही सम्यक् नैरात्म्य दर्शन है ।

१७६ ॐ ह्रीं निजचित्सदात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सन्मात्रोऽहम् ।

अन्य आत्मा के अभाव का नाम सुनो नैरात्म्य सुमन ।
स्वात्मा की सत्ता से युत स्वात्मा दर्शन नैरात्म्य दर्शन ॥

वर्तमान भौतिक युग मे तो हर घर में है भोग विलास ।
जिनके उर में है विराग वे इनसे रहते सदा उदास ॥

यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१७६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१७७)

वही कहते है

आत्मानमन्य-संपृक्तं पश्यन् द्वैतं प्रपश्यति ।
पश्यन्विभक्तमन्येभ्यः पश्यत्यात्मानमद्वयम् ॥१७७॥

अर्थ- जो आत्मा को अन्य से सपृक्त देखता है वह द्वैत को देखता है और जो अन्य सब पदार्थो से आत्मा को विभक्त देखता है वह अद्वैत को देखता है ।

१७७ ॐ ह्री देहादिसयोगरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्देहस्वरूपोऽहम् ।

जो आत्मा को तन सयुक्त देखता वह है द्वैत प्रसिद्ध ।
जो तन से विभक्त देखता वह अद्वैत देखता सिद्ध ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१७७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१७८)

एकाग्रता से आत्म दर्शन का फल

पश्यन्नात्मानमेकाग्रयात्क्षपयत्यर्जितान्मलान् ।
निरस्ताऽहं ममीभावः संवृणोत्यप्यनागतान् ॥१७८॥

अर्थ- अहकार ममकार के भाव से रहित योगी एकाग्रता से आत्मा को देखता हुआ सचित हुए कर्म मलों का जहाँ विनाश करता है वहाँ आने वाले कर्ममलो को भी रोकता है इस तरह बिना किसी विशेष प्रयत्न के सवर और निर्जरा रूप प्रवृत्त होता है ।

१७८ ॐ ह्रीं सचितकर्ममलरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अमलोऽहम् ।

आत्म जाग्रति का स्वरूप है पच महाव्रत का पालन ।
वन पर्वत सरित तट रहते होते जिन मुनि मन भावन ॥

अहंकार ममकार चाव से रहित हुआ एकाग्र स्वरूप ।
आत्मा को देखता कर्म मल क्षय करता है आत्म स्वरूप ॥
बिना किसी श्रम के सवर निर्जरा रूप परिणमता है ।
आने वाल कर्म रोकता पूर्व बद्ध क्षय करता है ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१७८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१७९)

स्वात्मा मे स्थिरता की वृद्धि करे साथ समाधि प्रत्योयों का परस्फुटन

यथा यथा समाध्याता लप्स्यते स्वात्नि स्थितिम् ।
समाधिप्रत्ययाश्चाऽस्य स्फुटिष्यन्ति तथा तथा ॥१७९॥

अर्थ समाधि मे पवृत्त होने वाला योगी जैसे जैसे स्वात्मा मे स्थिरता को प्राप्त होता जाएगा तैसे तैस समाधि के प्रत्यय भी उसके प्रस्फुटित होते जायेगे ।

१७९ ॐ ह्री स्वनिर्भरात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानचमत्कारस्वरूपोऽहम् ।

जो समाधि मे प्रवृत्त होकर स्वात्मा मे थिर हो ज्यो ज्यो ।
समाधि के प्रत्यय उसके प्रस्फुटित हुआ करते त्यो त्यो ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१७९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१८०)

स्वात्म दर्शन धर्म्य शुक्ल दोनों ध्यानो का ध्येय है

एतदद्वयोरपि ध्येयं ध्यानयोर्धर्म्यशुक्लयो: ।
विशुद्धि स्वामि भेदात्तु तयोर्भेदोऽवधार्यताम् ॥१८०॥

**मोक्ष मार्ग की पहिली सीढी परम अहिंसा अपरिग्रह ।
सत्यशील अस्तेय मूलगुण शुद्ध भाव मय हों निस्पृह ॥**

अर्थ यह स्वात्म दर्शन अथवा नैरात्म्याद्वैत दर्शन धर्म्य और शुक्ल दोनो ही ध्यानो का ध्येय है। विशुद्धि और स्वामी के भेद से दोनो ध्यानो का भेद निश्चित किया जाना चाहिये।

१८० ॐ ह्रीं निजबुद्धात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

स्वचित्स्वरूपोऽहम् ।

स्वात्मा दर्शन या नैरात्मय या दर्शन अद्वैत महान ।
धर्म शुक्ल दोनो ही ध्यानो का है ध्येय शुद्ध भगवान ॥
धर्म ध्यान मे जो विशुद्धि है शुक्ल ध्यान मे और अधिक ।
धर्म ध्यान पति मुनि होते या होते देश व्रती श्रावक ॥
ये श्रेणी चढने के पहिले होते धर्म ध्यान स्वामी ।
परम शुक्ल ध्यान के स्वामी केवलि प्रभु अन्तर्यामी ॥
शुक्ल ध्यान अष्टम से होता परम शुक्ल द्वादश के अत ।
त्रयोदशम अरु चतुर्दशम तक परम शुक्ल युत है भगवत ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१८०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१८१)

प्रस्तुत ध्येय के ध्यान की दु शक्यता और उसके अभ्यास की प्रेरणा

**इदं हि दुःशकं ध्यातुं सूक्ष्मज्ञानाऽवलम्बनात् ।
बोध्यमानमपि प्राज्ञैर्न च द्रागेव लक्ष्यते ॥१८१॥**

अर्थ यह आत्मा का अद्वैत दर्शन सूक्ष्म ज्ञान पर अवलम्बित होने से ध्यान के लिये बडा ही कठिन विषय है और विशिष्ट ज्ञानियो के द्वारा समझाया जाने पर भी शीध ही लक्षित नही होता। अत जो बुद्धि धन के धनी ज्ञानीजन है वे लक्ष्य को शक्य को दृष्ट और अदृष्टफल को स्थूल वितर्क का विषय बनाकर उसका अभ्यास करें ।

१८१ ॐ ह्री चिल्लक्ष्यात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानलक्ष्यस्वरूपोऽहम् ।

जीवन का सामान्य अर्थ है अपने चेतन की पहचान ।
फिर है अर्थ विशेष आत्मा निज का ही करना कल्याण॥

आत्मा का अद्वैत स्वदर्शन सूक्ष्म ज्ञान पर अवलबित ।
ध्यान हेतु यह बडा कठिन है शीघ्र नहीं होता लक्षित ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१८१॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१८२)

वही कहते है

तस्माल्लक्ष्यं च शक्यं च दृश्टाऽदृष्टफलं च यत् ।
स्थूलं वितर्कमालम्ब्य तदभ्यस्यन्तु धीधनाः ॥१८२॥

इस गाथा का अर्थ- गाथा न १८१ मे देखे ।

१८२ ॐ ह्री स्थूलवितर्कविषयविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अचिन्त्योऽहम् ।

जो है बुद्धिमान ज्ञानी जन करें लक्ष्य निज का अभ्यास ।
दृष्ट अदृष्ट वितर्क तर्क से करे आत्मा मे ही वास ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१८२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१८३)

अभ्यास का क्रम निर्देश

तत्राऽऽदौ पिण्डसिद्ध्यर्थं निर्मलीकरणाय च ।
मारुतीं तैजसीमाप्यां विदध्याद्धारणांक्रमात् ।१८३॥

अर्थ- इस अभ्यास मे पहले पिण्ड (देह) की सिद्धि और शुद्धि के लिये क्रमश मारुती तैजसी और आप्या (वारुणी) धारणा का अनुष्ठान करना चाहिये ।

एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय तक जीवों को समान जानो ।
सबको सिद्ध समान शुद्धलख अपना सिद्धस्वपद जमनो॥

१८३ ॐ ह्रीं मारुत्यादिधारणाविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निष्कलंकचित्स्वरूपोऽहम् ।

प्रथम मारुती फिर आग्नेयी फिर वारुणी धारणा हो ।
देह सिद्धि हित शुद्धि हेतु यह अनुष्ठान अति सम्यक् हो ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१८३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१८४)

वही कहते है

अकार मरुता पूर्य कुम्भित्वा रेफवह्निना ।
दग्ध वा स्ववपुषा कर्म, स्वतो भस्म विरेच्य च ॥१८४॥

अर्थ- नाभि कममल की कर्णिका मे स्थित अर्ह मत्र के अ अक्षर को पूरक पवन के द्वारा पूरित और कुम्भपवन के द्वार कुम्भित करके रेफ ( ) की अग्नि से हृदयस्थ कर्मचक्र को अपने शरीर सहित भस्म करके और फिर भस्म को (रेचकपवन द्वारा) स्वय विरेचित करके "ह" मत्र को आकाश मे ऐसे ध्याना चाहिये कि उससे आत्मा मे अमृत झर रहा है और उस अमृत से अन्य शरीर का निर्माण होकर वह अमृतमय और उज्जवल बन रहा है। तत्पश्चात् पच पिण्डाक्षरो (ह्रॉं, ह्री ह्रूँ ह्रौ हह) से (यथाक्रम) युक्त और शरीर के पाच स्थानो मे विन्यस्त हुए पच नमस्कार मत्रो से णमो अरहताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्व साहूण, इन मूल णमोकार मत्र के पॉच पदो से सकलीक्रिया करके तदनन्तर आत्मा को निर्दिष्ट लक्षण अर्हन्त रूप ध्यावे अथवा सकल कर्म रहित अमूर्तिक और ज्ञानभास्कर ऐसे सिद्ध स्वरूप ध्यावे ।

१८४ ॐ ह्रीं पूरककुभकादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ब्रह्मपूर्णोऽहम् ।

परमेष्ठी के पाचो पद की सकली क्रिया करो अमलान ।
नाभि कमल मे अर्ह राजे ऐसा यत्न करो बलवान ॥

विषय कषायें करो नियंत्रित इन्द्रिय निग्रह के द्वारा ।
मन चंचल को जीतो शुद्ध भाव से कर प्रयत्न सारा ॥

यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१८४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१८५)

वही कहते है

ह-मंत्रो नभसि ध्येयः क्षरन्नमृतमात्मनि ।
तेनाऽन्यत्तद्विनिर्माय पीयूषमयमुज्ज्वलम् ॥१८५॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न १८४ मे देखें ।

१८५ ॐ ह्रीं चिदमृतात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजब्रह्मपीयूषस्वरूपोऽहम् ।

सोलह उन्नत पत्रो पर फिर सोलह स्वर कर लो अकित ।
ज्ञानावरणादिक आठो कर्मो को फिर क्षय कर दो निश्चित॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१८५॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१८६)

वही कहते हैं

ततः पंचनमस्कारैः पंचपिंडाक्षराऽन्वितैः ।
पंच स्थानेषु विन्यस्तैर्विधाय सकलीक्रियाम् ॥१८६॥

इस गाथा का अर्थ- गाथा न १८४ में देखें ।

१८६ ॐ ह्रीं अखण्डचिदात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अखण्डैकबोधस्वरूपोऽहम् ।

ज्ञानार्णव व योग शास्त्र मे वर्णित पृथ्वी आदिक पाच ।
विविध धारणाएँ समझो फिर करो आत्मा का ही ध्यान ॥

नर से नारायण तीर्थंकर बनने का श्रम सर्वोत्तम ।
उससे भी सर्वोत्तम श्रम है सिद्ध स्वपद का परमोत्तम ॥

यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१८६॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१८७)

वही कहते है

पश्चादात्मानमर्हन्तं ध्यायेन्निर्दिष्टलक्षणम् ।
सिद्धं वा ध्वस्तकर्माणममूर्त ज्ञान भास्वरम् ॥१८७॥

इस गाथा का अर्थ- गाथा न १८४ मे देखे

१८७ ॐ ह्री समस्तकर्मरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानसूर्यस्वरूपोऽहम् ।

आत्मा को अरहंत रूप लक्षण निर्दिष्ट सहित जानो ।
सकल कर्म से रहित अमूर्तिक सिद्ध ज्ञान भास्कर जानो ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१८७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१८८)

स्वात्मा के अर्हद्रूप से ध्यान मे भ्रान्ति की आशका

नन्वनर्हन्तमात्मानमर्हन्तं ध्यायतां सताम् ।
अतस्मिंस्तद्ग्रहो भ्रान्तिर्भवतां भवतीति चेत् ॥१८८॥

अर्थ- यहाँ कोई शिष्य शका करता है कि जो आत्मा अर्हन्त नहीं उसको अर्हन्त रूप से ध्यान करने वाले आप सत्पुरुषो के क्या जो वस्तु जिस रूप मे नहीं उसे उस रूप में ग्रहण रूप भ्रान्ति नही होती है ।

१८८ ॐ ह्री परभ्रान्तिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजचिदीश्वरस्वरूपोऽहम् ।

क्रोध मूढ़ता से होता प्रारभ अन्त है पश्चाताप ।
क्रोध आक्रमण करता है जब होता नर को पक्षाघात ॥

जो आत्मा अरहत नहीं उसका अरहंत रूप यह ध्यान ।
कैसे हो सकता बतलाओ यह तो भ्रान्ति बड़ी बलवान ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१८८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१८९)

भ्रान्ति की शका का समाधान

तत्र चोद्यं यतोऽस्माभिर्भावार्हन्नयमर्पित: ।
स चाऽर्हद्ध्यान- निष्ठात्मा ततस्तत्रैव तद्ग्रह: ॥१८९॥

अर्थ उक्त शका ठीक नहीं है, क्योक हमारे द्वारा यह भाव अर्हन्त विवक्षित है और वह भाव अर्हन्त अर्हन्त के ध्यान मे लीन आत्मा है अत उस अर्हद्ध्यान लीन आत्मा मे ही अर्हन्त का ग्रहण है, और इसलिये भ्रान्ति की कोई बात नही है ।

१८९ ॐ ह्री स्वनिरंजनात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

परमब्रह्मस्वरूपोऽहम् ।

यहॉ भाव अरहत विवक्षित जो आत्मा का लक्ष्य महान ।
अर्हद ध्यान लीन आत्मा मे है अर्हतों का आहवान ॥
इसमे कोई भ्रान्ति नही है यहॉ, भाव अर्हत स्व लक्ष ।
यहॉ द्रव्य अरहंत लक्ष्य मे नही यहॉ आत्मा प्रत्यक्ष ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१८९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१९०)

वही कहते हैं

परिणमते येनाऽऽत्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति ।
अर्हद्ध्यानाऽऽविष्टो भावार्हन् स्यात्स्वयं तस्मात् ॥१९०॥

आत्म नाश में सक्षम क्रोध अधोगतियों मे ले जाता ।
नहीं उबरने देता है यह महा घोर दुख का दाता ॥

अर्थ- जो आत्मा जिस भाव रूप परिणमन करता है वह उस भाव से साथ तन्मय होता है अत अर्हद्ध्यान से व्याप्त आत्मा स्वय भाव अर्हन्त होता है ।

१९० ॐ ह्रीं ज्ञानमयात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

चिन्मयस्वरूपोऽहम् ।

जो आत्मा जिस भाव रूप परिणत हो वह उसमय होता ।
अर्हत् ध्यान व्याप्त आत्मा स्वय भाव अर्हत होता ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१८०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१९१)

वही कहते है

येन भावेन यद्रूपं ध्यायत्यात्मानमात्मवित् ।
तेन तन्मयतां याति सोपाधिः स्फटिको यथा ॥१९१॥

अर्थ- आत्म ज्ञानी आत्मा को जिस भाव से जिस रूपध्याता है उसके साथ वह उसी प्रकार तन्मय हो जाता है जिस प्रकार कि उपाधिके साथ स्फटिक ।

१९१ ॐ ह्री उपाधिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निरुपाधिस्वरूपोऽहम् ।

जो ध्याता जिस भाव तथा जिस रूप आत्मा को ध्याता ।
वही आत्म ज्ञानी तन्मय हो उसी भाति वह हो जाता ॥
जैसे मणि स्फटिक रूप जिससे करती उपाधि संयुक्त ।
उस उस रूप स्वत हो जाती जब तक रहती है संयुक्त ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१९१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

घी पाने के लिए परिश्रम पूर्वक दधि मथना पड़ता ।
शिव सुख पाने हेतु सतत श्रम मुनि बन कर करना पड़ता॥

(१९२)

वही कहते हैं

अथवा भाविनो भूता: स्वपर्यायास्तदात्मका: ।
आसते द्रव्यरूपेण सर्वद्रव्येषु सर्वदा ॥१९२॥

अर्थ- अथवा सर्व द्रव्यो मे भूत और भावी स्वपार्यये तदात्मक हुई द्रव्य रूप से सदा विद्यमान रहती है। अत' यह भावी अर्हत्पर्याय भाव जीवो मे सदा विद्यमान है तब इस सत् रूप से स्थित अर्हत्पर्याय के ध्यान मे विभ्रम का क्या काम ?

१९२ ॐ ह्री भूतभाविपर्यायविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सदाशुद्धोऽहम् ।

सर्व द्रव्य मे भूत और भावी पर्याय तदात्मक है ।
द्रव्य रूप से सदा विद्य है मानो ये द्रव्यात्मक है ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१९२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१९३)

वही कहते हे

ततोऽयमर्हत्पर्यायो भावी द्रव्यात्मना सदा ।
भव्येष्वास्ते सतश्चाऽस्य ध्याने को नाम विभ्रम: ॥१९३॥

अर्थ अपने आत्मा को अर्हन्त रूप से ध्याने मे विभ्रम की कोई बात नहीं है। यही भ्रान्ति के अभाव की बात अपने आत्मा को सिद्ध रूप ध्याने के सम्बन्ध मे भी समझनी चाहिये।

१९३ ॐ ह्रीं भव्याभव्यविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सदाशिवस्वरूपोऽहम् ।

निज आत्मा अर्हत रूप से ध्याने मे विभ्रम न कही ।
इस प्रकार से सिद्ध रूप से ध्याने मे कुछ भ्रम न कहीं ॥

जो तुम अपने लिए चाहते वही अन्य के हित चाहो ।
जो अपने हित नहीं चाहते वह न अन्य के हित चाहो ॥

यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१९३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि. ।

(१९४)

अर्हद्रूप ध्यान को भ्रान्त मानने पर ध्यान फल नहीं बनता

किं च भ्रान्तं यदीदं स्यात्तदा नाऽतः फलोदयः ।
नहि मिथ्याजलाज्जातु विच्छित्तिर्जायते तृषः ॥१९४॥

अर्थ- और यदि किसी तरह इस ध्यान को भ्रान्त रूप मान भी लिया जाय तो इससे फल का उदय नही बन सकेगा क्योकि मिथ्या जल से कभी तृषा का नाश नहीं होता प्यास नहीं बुझती ।

१९४ ॐ ह्रीं फलोदयविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नित्यबुद्धोऽहम् ।

इसी ध्यान को भ्रान्त रूप माना तो फल का उदय नहीं ।
मिथ्या जल रो कभी तृषा की पीडा बुझती नही कही ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१९४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(१९५)

वही कहते है

प्रादुर्भवन्ति चाऽमुष्मात्फलानि ध्यानवर्त्तिनाम् ।
धारणा-वशतः शान्त-क्रूर-रूपाण्यनेकधा ॥१९५॥

अर्थ- किन्तु इस ध्यान से ध्यानवर्तियो के धारणा के अनुसार शान्तरूप और क्रूर रूप अपने प्रकार के फल उदय को प्राप्त होते है ऐसा देखने में आतात है ।

१९५ ॐ ह्रीं शान्तक्रूरादिभावरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नित्यविरागस्वरूपोऽहम् ।

जो प्रज्ञा का सागर होता मिथ्यातम से डरता है ।
जो विभाव का सागर होता वह न रंच भी डरता है ॥

इसी ध्यान से ध्यान वर्त्तियो को होती है शान्ति अपार ।
क्रूर रूप फल भी मिलता है ध्यान धारणा के अनुसार ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१९५॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१९६)

ध्यान फल का स्पष्टीकरण

गुरूपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः ।
अनन्तशक्तिरात्माऽयं मुक्तिं भुक्तिं च यच्छति ॥१९६॥

अर्थ- सम्यक् गुरु के उपदेश को प्राप्त हुए एकाग्र ध्यानियो के द्वारा ध्यान किया जाता हुआ यह अनन्त शक्ति युक्त अर्हन् आत्मा मुक्ति तथा भुक्ति को प्रदान करता है ।

१९६ ॐ ह्रीं अनन्तबलसपन्नात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजशक्तिसपन्नोऽहम् ।

गुरु उपदेश प्राप्त ध्यानियो के द्वारा होता यह ध्यान ।
भुक्ति मुक्ति का दाता बल युत है अर्हन आत्मा का धाम ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१९६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१९७)

वही कहते हैं

ध्यातोऽर्हत्सिद्धरूपेण चरमाङ्गस्य मुक्तये ।
तद्ध्यानोपात्त-पुण्यस्य स एवाऽन्यस्य भुक्तये ॥१९७॥

अर्थ- अर्हद्रूप अथवा सिद्ध रूप से ध्यान किया गया (यह आत्मा) चरमशरीरी ध्याता के मुक्ति का और उससे भिन्न अन्य ध्याता के भुक्ति का कारण बनता है जिसने उस ध्यान से विशिष्ट पुण्य का उपार्जन किया है ।

है मिथ्यात्व बंध का कारण घोष कर रहा जिन आगम ।
किन्तु मूढ़ मन इसे अकिंचित्कर कह कभी न डरता है॥

१९७ ॐ ह्रीं मुक्तिभुक्तिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

निजसुधारसोऽहम् ।

चरम् शरीरी ध्याता पाता सिद्ध रूप ध्यान से मुक्ति ।
इससे भिन्न ध्यान के कारण ध्याता को मिलती है भुक्ति ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१९७॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१९८)

वही कहते हैं

**ज्ञान श्रीरायुरारोग्यं तुष्टिः पुष्टिर्वपुर्धृतिः ।
यत्प्रशस्तमिहाऽन्यच्च तत्तद्ध्यातुः प्रजायते ॥१९८॥**

अर्थ- ज्ञान श्री (लक्ष्मी, विभूति, वरुणी, शोभा, पर्भा, उच्चस्थिति) आयु, आरोग्य सन्तोष, पोष, शरीर, धैर्य तथा और भी जो कुछ इस लोक मे प्रशस्त रूप वस्तुए है वे सब ध्याता को प्राप्त होती है ।

१९८ ॐ ह्री ज्ञानश्रीसपन्नात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निरामयस्वरूपोऽहम् ।

आयु धैर्य आरोग्य श्री आदिक प्रशस्त की होती प्राप्ति ।
शुद्ध ध्यान बल से होती है जब ध्याता के उर में व्याप्ति॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओं से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥१९८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(१९९)

वही कहते हैं

**तदध्यानाविष्टमालोक्य प्रकम्पन्ते महाग्रहाः ।
नश्यन्ति भूत-शाकिन्यः क्रूराः शाम्यन्ति च क्षणात् ॥१९९॥**

सत्तर कोड़ा कोडी सागर का जो बंध कराता है ।
उसे अबंधक मान रहा ये बध अनतो करता है ॥

अर्थ- उस अर्हत् थवा सिद्ध के ध्यान से व्याप्त आत्मा को देखकर महाग्रह सूर्य चन्द्रमादिक प्रकम्पित होते है भूत तथा शाकिनियाँ नाश को प्राप्त हो जाती है अपना कोई प्रभाव जमाने नहीं पातीं, और क्रूर जीव क्षण मात्र ने अपनी क्रूरता छोडकर शान्त बन जाते है ।

१९९ ॐ ह्री भूतशाकिन्यादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चैतन्यश्रीस्वरूपोऽहम् ।

दुर्ध्यानो के भी प्रकार है जो कि अधोगति के दाता ।
उनका भी वर्णन आता है जो कि आत्म सुख के घाता ॥
अर्हत अथवा सिद्ध ध्यान से व्याप्त आत्मा को लखकर ।
क्रर महाग्रह भी कपित होते अघ होते शान्त प्रखर ॥
धर्म ध्यान को छोड सभी दुर्ध्यान त्यागने के है योग्य ।
शुद्ध मुक्ति के बाधक कारण सदा सर्वथा पूर्ण अयोग्य ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो है सदा अयोग्य ॥१९९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२००)

ध्यान द्वारा कार्य सिद्धि का व्यापक सिद्धान्त

यो यत्कर्म प्रभुर्देवस्तद्ध्यानाविष्ट मानसः ।
ध्याता तदात्मको भूत्वा साधयत्यात्म-वांछितम् ॥२००॥

अर्थ- जो जिस कर्म का स्वामी अथवा जिस कर्म के करने मे समर्थ देव है उसके ध्यान से व्याप्तचित्त हुआ ध्याता उस देवतारूप होकर अपना वाछित अर्थ सिद्ध करता है ।

२०० ॐ ह्री निजप्रभुस्वरूपात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ईश्वरस्वरूपोऽहम् ।

जिसका ध्यान किया जाता वह अर्थ वाछित करता सिद्ध ।
उसी ध्यान से व्याप्त चित्त ध्याता करता निज कार्य सुसिद्ध ॥

आगम का बहुमान न उर मे आचार्यो का मान नहीं ।
अपनी फूटीं ढपली पर ये खोटी ध्वनि ही करता है ॥

अगर व्याप्त हो निज आत्मा में श्री अरहंत सिद्ध का ध्यान।
घोर क्रूर ग्रह त्वरित प्रकपित होकर हो जाते अवसान ॥
क्रूर जीव क्रूरता छोडकर स्वत शान्त हो जाते हैं ।
तीव्र क्रूर परिणाम शमन हो स्वय कही खो जाते है ॥
यही तत्त्व अनुशासन का है शुद्ध सार अनुभव के योग्य ।
शेष अन्य चर्चाओ से क्या वे सब तो हैं सदा अयोग्य ॥२००॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२०१)

वेसे कुछ ध्यानों और उनके फल का निर्देश

पार्श्वनाथ भवन्मंत्री सकलीकृत विग्रहः ।
महामुद्रा महामंत्रं महामण्डलमाश्रितः ॥२०१॥

अर्थ- जो मन्त्री मन्त्राराधक योगी शरीर को सकलीक्रिया से सम्पन्न किए हुए है महामुद्रा, महामन्त्र तथा महामण्डल का आश्रय लिए हुए हैं और तैजसी आदि धारणाओं को यथोचित रूप मे धारण किए हुए है वह पार्श्वनाथ होता हुआ अपने को पार्श्वनाथ रूप मे ध्याता हुआ शीघ्र ही उग्रग्रहो के निग्रहादिक को करता है ।

२०१ ॐ ह्री महामुद्रादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानमुद्रास्वरूपोऽहम् ।

मन्त्राराधक योगी जब करता है पार्श्वनाथ का ध्यान ।
उपग्रहो का निग्रह करता पार्श्वनाथ युत होता ध्यान ॥
सकली क्रिया महामुद्रा यह महामंत्र का ले आश्रय ।
धार तैजसी आदि धारणाए करता है ध्यान विजय ॥
उन समान यह हो जाता है ग्रन्थान्तर से लो यह जान ।
यह भी ध्यान मार्ग म बाधक भली भाति से लो यह मान ॥

अरे अकिंचित्कर न कभी मिथ्यात्व भाव हो सकता है ।
जो यह निर्णय कर लेता है वही मोक्ष सुख वरता है ॥

विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२०१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(२०२)

तैजसी प्रभृतीर्विभ्रद्धारणाश्च यथोचितम् ।
निग्रहादोनुदग्राणां ग्रहाणं कुरुते द्रुतम् ॥२०२॥

इस गाथा का अर्थ- गाथा न २०१ में देखे ।

२०२ ॐ ह्रीं तैजस्यादिधारणाविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजनाथस्वरूपोऽहम् ।

धर्म ध्यान से इन ध्यानों का कोई भी सबध नही ।
जिसके उर मे पर की चिन्ता क्या वह प्राणी अध नहीं ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२०२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२०३)

वही कहते है

स्वयमाखण्डलो भूत्वा महीमण्डल-मध्यगः ।
किरीटी कुण्डली वज्री पीत-भूषाऽम्बरादिकः ॥२०३॥

अर्थ- स्वय मुकुट मण्डल वज्र विशिष्ट और पीत भूषण वसनादिक को धारण किये हुए इन्द्र होकर पृथ्वीमण्डल के मध्य मे प्राप्त हुआ ।

२०३ ॐ ह्रीं निजेन्द्रात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानेन्द्रस्वरूपोऽहम् ।

कुन्डल मुकुट वज्र पीले वस्त्रो से जो होता सयुक्त ।
इन्द्र रूप हो पृथ्वी मडल के सुमध्य से होता युक्त ॥

मनुज जनम से नहीं कर्म से ही महान होता आया ।
वह क्या अरे महान बनेगा जो सुख मैं सोता आया ॥

विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२०३॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२०४)

कुम्भ की स्तम्भ-मुद्राढ्य स्तम्भनं मंत्रमुच्चरन् ।
स्तम्भ-कार्याणि सर्वाणि करोत्येकाग्र मानसः ॥२०४॥

अर्थ- कुम्भपवन को साधे हुए स्तम्भ मुद्रा से युक्त और एकाग्रचित्त हुआ स्तम्भन मन्त्र का उच्चारण करता हुआ सारे स्तम्भन कार्यो को करता है ।

२०४ ॐ ह्री स्तम्भनमुद्रादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चिन्मुद्रास्वरूपोऽहम् ।

कुम्भक पवन साधता है वह स्तभन मुद्रा से युक्त ।
उच्चारण स्तम्भन मत्रो से हो जाता है संप्रक्त ॥
स्तभन मुद्रा हो अथवा हो स्तम्भन कार्य विशिष्ट ।
मोक्ष मार्ग के ये बाधक है पलभर को भी कभी न इष्ट ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२०४॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२०५)

स स्वयं गुरडीभूयक्ष्वेडं क्षपयति क्षणात् ।
कन्दर्पश्च स्वयं भूत्वा जगन्नयति वश्यताम् ॥२०५॥

अर्थ- वह मन्त्री योगी ध्यान द्वारा स्वयं गरुड रूप होकर विष को क्षण भर में दूर कर देता है और स्वय कामदेव होकर जगत को अपने वश मे कर लेता है। इसी प्रकार सैकडो ज्वालाओ से प्रज्वलित अग्नि रूप होकर और ज्वालाओं से रोगी के शरीर को व्याप्त करके शीघ्र ही शीतज्वर को हरता है तथा स्वयं अमृतरूप होकर रोगी को आत्मसात् करके उसके शरीर में अमृत की वर्षा करता हुआ उसेक दाहज्वर का विनाश करता है और क्षीरोदधि

सदा स्वयं को जानो और स्वयं को पहचानो जाग्रत ।
तथा स्वय मे ही रम जाओ पाओगे शिवपद शाश्वत ॥

रूप होकर सारे जगत को उसमे तिराता, बहाता अथवा स्नान कराता हुआ वह योगी शरीरधारियो के शान्तिक तथा पौष्टिक कर्म को करता है ।

२०५ ॐ ह्रीं कन्दर्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अविकारोऽहम् ।

ध्यानी ध्यानारूढ स्वयं ही गरुड रूप हो जाता है ।
महा सर्प विष पल मे हरता कामदेव बन जाता है ॥
रोगी तन में व्याप्त शीत ज्वर अथवा रोग दाह का ज्वर ।
पलभर मे क्षय कर देता है तन मे अमृत वर्षा कर ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२०५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२०६)

वही कहते है

एव वैश्वानरीभूय ज्वलज्ज्वाला-शताकुल: ।
शीतज्वर हरत्याशु व्याप्य ज्वालाभिरातुरम् ॥२०६॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न २०५ मे देखें ।

२०६ ॐ ह्री ज्ञानाग्निरूपात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानप्रकाशस्वरूपोऽहम् ।

क्षीरोदधि सम शान्तिक और पौष्टिक करता रहता कर्म ।
पर को सुखी बनाने में रत भूल रहा है अपना धर्म ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान कभी अनुरूप॥२०६॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

सारे जग को जान वीतरागी अलिप्त तुम बन जाओ ।
पर से सदा अप्रभावित रह कर निज भगवान स्वपद पाओ ॥

(२०७)

वही कहते हैं

स्वयं सुधामयो भूत्वा वर्षन्नमृतमातुरे ।
अथैनमात्मसात्कृत्य दाहज्वरमपास्यति ॥२०७॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न २०५ मे देखे ।

२०७ ॐ ह्रीं संसारदाहज्वररहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

चित्सुधास्वरूपोऽहम् ।

ऐसे ध्यान अनेको करके होता है योगी पथ भ्रष्ट ।
शुद्ध ध्यान से च्युत होता है पाता है भव सागर कष्ट ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२०७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२०८)

वही कहते हैं

क्षीरोदधिमयो भूत्वा प्लावयन्नखिलं जगत् ।
शान्तिकं पौष्टिकं योगी विदधाति शरीरिणाम् ॥२०८॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न. २०५ मे देखे ।

२०८ ॐ ह्री ज्ञानोदधिरूपात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चैतन्योदधिस्वरूपोऽहम् ।

जिसका होता ध्यान हृदय मे उसी रूप हो जाता है ।
जग की भूल भुलैया मे फस उसमे ही खो जाता है ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२०८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

जो नर है निष्कपट सहज उसकी आत्मा होती है शुद्ध।
धर्म उसी के पास ठहरता जो प्राणी होता है बुद्ध ॥

(२०९)

तद्देवताममय ध्यान के फल का उपसहार

किमत्र बहुनोक्तेन यद्यत्कर्म चिकीर्षति ।
तद्देवतामयो भूत्वा तत्तन्निर्वर्तयत्ययम् ॥२०९॥

अर्थ- इस विषय मे बहुत करने से क्या ? यह योगी जो भी काम करना चाहता है उस उस कर्म के देवता रूप स्वय होकर उस उस कार्य को सिद्ध कर लेता है ।

२०९ ॐ ह्री परमचिद्देवात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

परमशिवदेवस्वरूपोऽहम् ।

बहुत कहे क्या जो करना है वही काम कर लेता है ।
उन कर्मो का बना अधिष्ठाता सब कुछ कर लेता है ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान कभी अनुरूप॥२०९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२१०)

वही कहते हैं

शान्ते कर्मणि शान्तात्मा क्रूरे क्रूरो भवन्नयम् ।
शान्त क्रूराणि कर्माणि साधयत्येव साधकः ॥२१०॥

अर्थ- यह साधक योगी शान्ति कर्म के करने में शान्तात्मा और क्रूर कर्म के करने मे क्रूरात्मा होता हुआ शान्त तथा क्रूर कर्मो को सिद्ध करता है ।

२१० ॐ ह्रीं शान्तक्रूरकर्मरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

स्वयंनिर्विकल्पोऽहम् ।

शान्त कर्म करता है तो यह शान्त रूप हो जाता है ।
क्रूर कर्म करता है तो यह क्रूरात्मा हो जाता है ॥

मन विडंबना युत होता तो मानव में होता मतभेद ।
विडंबना क्षय हो जाती तो क्षय हो जाता है मत भेद ॥

विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२१०॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२११)

समरसी भाव की सफलता से उक्त भ्रान्ति का निरसन

आकर्षणं वशीकारः स्तम्भनं मोहनं द्रुतिः ।

निर्विषीकरणं शान्तिर्विद्वेषोच्चाट-निग्रहाः ॥२११॥

अर्थ ध्यान का अनुष्ठान करने वालो के आकर्षण, वशीकरण, स्तम्भन, मोहन विद्रावण, निर्विषीकरण, शान्तिकरण, विद्वेषन, उच्चाटन, निग्रह इत्यादि कार्य दिखाई पडते है। अत सममरसी भाव के सफल होने से विभ्रम की कोई बात नही है ।

२११ ॐ ह्रीं आकर्षणाादिकार्यरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजबोधसुधास्वरूपोऽहम् ।

आकर्षण स्तम्भन मोहन वशीकरण विद्रावणरूप ।
उच्चाटन विद्वेषण निग्रह शान्ति करण आदिक ये रूप ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२११॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२१२)

वही कहते है

एवमादीनि कार्याणि दृश्यन्ते ध्यानवर्तिनाम् ।

ततः समरसीभाव सफलत्वान्न विभ्रमः ॥२१२॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न २११ मे देखे ।

२१२ ॐ ह्रीं सर्वविभ्रमरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

चित्प्रकाशस्वरूपोऽहम् ।

मै चेतन हू पुद्गल से सर्वथा भिन्न है मेरा रूप ।
ज्ञान स्वरूप सदैव अभौतिक शुद्ध अलौकिक आत्म स्वरूप ॥

ये सब कार्य किया करता है भूल आपना आत्म स्वरूप ।
नहीं समरसी भाव हृदय मे व्यर्थ बना है यह विद्रूप ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२१२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२१३)

**यत्पुनः पूरणं कुम्भो रेचनं दहनं प्लवः ।
सकलीकरणं मुद्रा मन्त्र मंडल धारणाः ॥२१३॥**

अर्थ- इसके अलावा जो पूरण, कुम्भन, रेचन, दहन, प्लवन, सकलीकरण, मुद्रा मत्र मडल धारणा -कर्माधिष्ठाता देवो का सस्थान लिङ्ग आसन प्रमाण वाहन वीर्य जाति नाम ज्योति दिशा मुखसख्या नेत्रसख्या भुजासख्या क्रूरभाव शान्त भाव वर्ण स्पर्श स्वर अवस्था वस्त्र भूषण आयुध इत्यादि और जो कुछ अन्य शान्त तथा क्रूर कर्म के लिये मत्रवाद आदि ग्न्थो मे कहा गया है वह सब ध्यान का परिकर है यथाविविक्षित ध्यान की उपकारक सामग्री है ।

२१३ ॐ ह्री दहनाप्लवनादिध्यानपरिकररहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।
शिवासनस्वरूपोऽहम् ।

पूरण कुम्भन रेचन सकली करण प्लवन मुद्रा अरु मत्र ।
मडल आदि धारणा कर्माधिष्ठाता देवों के तंत्र ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२१३॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२१४)

वही कहते है

**कर्माऽधिष्ठातृ-देवानां संस्थानं लिङ्गमासनम् ।
प्रमाणं वाहनं वीर्यं जातिर्नाम-द्युतिर्दिशा ॥२१४॥**

इस गाथा का अर्थ गाथा न २१३ मे देखे ।

चार अनत चतुष्टय के पति होते हैं सर्वज्ञ महान ।
तीर्थंकर अरहंत केवली साधारण असाधारण जान ॥

२१४ ॐ ह्रीं सस्थानादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अलिङ्गस्वरूपोऽहम् ।

सस्थान अरु लिग तथा आसन प्रमाण वाहन आदिक ।
वीर्य आदि या नाम ज्योति या और बहुत से नामादिक ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२१४॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२१५)

वही कहते हैं

भुज वक्त्र नेत्र संख्या भावः क्रूरस्तथेतरः ।
वर्णः स्पर्शः स्वरोऽवस्था वस्त्रं भूषणमायुधम् ॥२१५॥

इस गाथा का अर्थ गाथा न २१३ मे देखे ।

२१५ ॐ ह्री नेत्रसख्यादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञाननेत्रोऽहम् ।

दिशा मुख्य सख्या या सख्या नेत्र भुजा सख्याके रूप ।
क्रूर भाव या शान्ति भाव या वर्ण स्पर्श तथा स्वस्वरूप ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२१५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२१६)

वही कहते है

एवमादि यदन्यच्च शान्त क्रूराय कर्मणे ।
मंत्रवादादिषु प्रोक्तं तद्ध्यानस्य परिच्छदः ॥२१६॥

इस गाथा का अर्थ गाथा नं २१३ में देखें ।

मनुष्य गति मे ही होता तीर्थंकर कर्म प्रकृति का बध ।
अन्य किसी गति मे ना होता परमोत्कृष्ट प्रकृति का बंध ॥

२१६ ॐ ह्रीं भूषणायुधादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निरायुधस्वरूपोऽहम् ।

वस्त्र तथा आभूषण आयुध आदि अवस्था का जो रूप ।
क्रूर कर्म या शान्त कर्म सब मत्र वाद के ही है रूप ॥
यही ध्यान के विषय बताए सभी ध्यान के ये परिवार ।
निज सम्यक् श्रद्धा के बिना नही होती है सिद्धि विचार ॥
ज्ञान अधूरा अथवा है श्रद्धान अधूरा सब वेकार ।
तथा अधूरी सामग्री हो तो भी होता कष्ट अपार ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
विना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२१६॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२१७)

लौकिकादि सारी फल प्राप्ति का प्रधान कारण ध्यान

यदात्रिकं फलं किंचित्फलमामुत्रिकं च यत् ।
एतस्य द्वितयस्यापि ध्यानमेवाऽग्रकारण् ॥२१७॥

अर्थ- इल लोक सम्बन्धी जो फल है उसका और परलोक सम्बन्धी जो फल है उसका भी ध्यान ही मुख्य कारण है ध्यान से दोनो लोक सम्बन्धी यथेच्छित फलो की प्राप्ति होती है ।

२१७ ॐ ह्री इहपरलोकफलापेक्षारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानभूषणस्वरूपोऽहम् ।

लोक तथा परलोक आदि सबधी फल देता है ध्यान ।
जैसा ध्यान करोगे वैसा ही फल पाओगे लो जान ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२१७॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

तीर्थंकर यशा प्रकृति स्वंयही आ जाती है अपने आप ।
जो बांधना चाहते इसको उनको तो बंधता है पाप ॥

(२१८)

ध्यान का प्रधान कारण गुरुपदेशादि चतुष्टय

ध्यानस्य च पुनर्मुख्यो हेतुरेतच्चतुष्टयम् ।
गुरूपदेशः श्रद्धानं सदाऽभ्यासः स्थिरं मनः ॥२१८॥

अर्थ- और उधर ध्यान सिद्धि का मुख्य कारण यह चतुष्टय है जो कि गुरु उपदेश श्रद्धान निरन्तर अभ्यास और स्थिर मन के रूप में है ।

२१८ ॐ ह्रीं श्रद्धानसदाभ्यासादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चिद्भूषणस्वरूपोऽहम् ।

ध्यान सिद्धि के मुख्य सुकारण चार चतुष्टय होते है ।
गुरु उपदेश सुदृढ श्रद्धा अभ्यास सुथिरपन होते हैं ॥
इनके बिना न सिद्धि ध्यान की तीन काल मे होती है ।
बिना चतुष्टय ध्याता की तो नही ध्यान मति होती है ।
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२१८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२१९)

प्रदर्शित ध्यान फल से ध्यान फल को ऐहिक ही मानने का निषेध

अत्रैव माऽऽग्रहं कार्षुर्यद्ध्यान-फल मैहिकम् ।
इदं हि ध्यानमाहात्म्य-ख्यापनाय प्रदर्शितम् ॥२१९॥

अर्थ- इस ध्यान फल के विषय किसी को यह आग्रह नहीं करना चाहिये कि ध्यान का फल ऐहिक ही होता है क्योकि यह ऐहिक फल तो यहाँ ध्यान के माहात्म्य की प्रसिद्धि के लिए प्रदर्शित किया गया है ।

२१९ ॐ ह्रीं ऐहिकफलरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निष्कामचित्स्वरूपोऽहम् ।

तीर्थ वही जिसके आश्रय से भव समुद्र होता है पार ।
तीर्थकर जिस भू से जाते मोक्ष वही है तीर्थ उदार ॥

लौकिक जन लौकिक फल जाने बिना समझते कभी न ध्यान।
इसीलिए कथनी करते है पर है लौकिक ध्यान कुध्यान ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२१९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(२२०)

ऐहिक फलार्थियों का ध्यान आर्त्त या रौद्र

तदध्यान रौद्रमार्त्त वा यदैहिक-फलार्थिनाम् ।
तस्मादेतत्परित्यज्य धर्म्यं शुक्लमुपास्यताम् ॥२२०॥

अर्थ- ऐहिक फल के चाहने वालो के जो ध्यान होता है वह या तो आर्त्त ध्यान है या रौद्र ध्यान। अत इस आर्त्त तथा रौद्र ध्यान का परित्याग कर धर्म्य ध्यान तथा शुक्ल ध्यान की उपासना करनी चाहिये ।

२२० ॐ ह्रीं रौद्रध्यानरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शिवामृतस्वरूपोऽहम् ।

लोकिक ध्यान जु आर्त्त ध्यान अथवा है रौद्र ध्यान जानो ।
आर्त्त रौद्र का परित्याग कर धर्म ध्यान उर मे आनो ॥
शुक्ल ध्यान की कर उपासना केवल ज्ञान लब्धि ध्याओ ।
घाति अघाति विनाश कर्म सब निज बल से शिवपुर जाओ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२२०॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२२१)

वह तत्त्वज्ञान जो शुक्ल बनते है

तत्त्वज्ञानमुदासीनमपूर्वकरणादिषु ।
शुभाऽशुभ-मलाऽपायाद्विशुद्धं शुक्लमभ्युधः ॥२२१॥

निःसशय उर राग द्वेष से विरहित ही सर्वोत्तम है ।
ज्ञान प्रदाता धर्म प्रवर्तक ही भगवान जिनोत्तम है ॥

अर्थ- अपूर्वकरण आदि गुणस्थानो में जो उदासीन अनासक्तिमय तत्त्वज्ञान होता है वह शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के मल के नाश होने के कारण शुक्ल ध्यान कहा गया है।

२२१ ॐ ह्रीं शुभाशुभमलरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

निर्मलोऽहम् ।

अष्टम अपूर्व करण आदि में अनासक्ति मय तत्त्वज्ञान ।
भाव शुभाशुभ मल क्षय कर्त्ता शुक्ल ध्यान ही है गतिमान॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२२१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२२२)

शुक्ल ध्यान का स्वरूप

शुचिगुण-योगाच्छुक्लं कषाय-रजसः क्षयादुपशमाद्वा ।
माणिक्य-शिखा-वदिदं सुनिर्मलं निष्प्रकम्पं च ॥२२२॥

अर्थ- कषाय रज के क्षय होने अथवा उपशम होने से और शुचि पवित्र गुणो के योग से शुक्ल ध्यान होता है और यह ध्यान माणिक्य शिखा की तरह सुनिर्मल तथा निष्कप रहता है ।

२२२ ॐ ह्री कषायरजरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शुचिस्वरूपोऽहम् ।

क्षय कषाय रज होने से अथवा उपशम होने से ध्यान ।
शुचि पवित्र गुण के सुयोग से होता है यह शुक्लध्यान ॥
यह माणिक्य शिखर समान निर्मल निष्कप रूप होता ।
शुद्ध स्वभाव परिणमन आत्मा का ही शुक्ल ध्यान होता ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२२२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

कभी किसी प्राणी की हिंसा नहीं भूलकर करना आप ।
सकल ज्ञान का सार यही है धर्म अहिंसा पालो आप ॥

(२२३)

मुमुक्षु को नित्य ध्यानाभ्यास की प्रेरणा

रत्नत्रयमुपादाय त्यक्त्वा बन्ध निबन्धनम् ।
ध्यानमभ्यस्यता नित्य यदि योगिन् ! मुमुक्षुसे ॥२२३॥

अर्थ- हे योगिन् ! यदि तू मोक्ष चाहता है तो सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय को ग्रहण करके बन्ध के कारण रूप मिथ्यादर्शनादिक के त्याग पूर्वक निरन्तर सद्ध्यान का अभ्यास कर ।

२२३ ॐ ह्री बन्धनिबन्धनरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चैतन्यरत्नस्वरूपोऽहम् ।

हे योगी यदि तू मुमुक्षु है रत्नत्रय कर अभी ग्रहण ।
मिथ्यात्वादिक त्याग पूर्वक कर सद्ध्यानाभ्यास सघन ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२२३॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२२४)

उत्कृष्ट ध्यानाभ्यास का फल

ध्यानाऽभ्यास-प्रकर्षेण त्रुटयन्मोहस्य योगिनः ।
चरमाऽङ्गस्य मुक्तिः सस्यात्तदैवाऽन्यस्य च क्रमात् ॥१२४॥

अर्थ ध्यान के अभ्यास की प्रकर्षता से मोह को नाश करने वाले चरम शरीरी योगी के तो उसी भव मे मुक्ति होती है और जो चरम शरीरी नहीं उसके क्रमश मुक्ति होती है ।

२२४ ॐ ह्री ध्यानाभ्यासप्रकर्षताविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानरत्नस्वरूपोऽहम् ।

जो प्रकृष्ट ध्यानाभ्यास से मोह नाश मे हुआ प्रवृत्त ।
यदि वह चरम शरीरी है तो उस भव से ही होता मुक्त ॥

मुक्ति मार्ग में तो बाधक है यही कर्म रूपी पर्वत ।
ज्ञान वज्र से इसे नष्ट कर पाओ मोक्ष स्वपद शाश्वत ॥

चरम शरीरी अगर नहीं है तो कुछ भव में होता मुक्त ।
परमोत्कृष्ट दशा पाता है निज स्वभाव से हो संयुक्त ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान कभी अनुरूप॥२२४॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२२५)

वही कहते हैं

तथा ह्यचरमाऽङ्गस्य ध्यानमभ्यस्यतः सदा ।
निर्जरा संवरश्च स्यात्सकलाऽशुभकर्मणाम् ॥२२५॥

अर्थ- तथा ध्यान का अभ्यास करने वाले अचरमाङ्ग योगी के सदा अशुभकर्मो की निर्जरा होती है और सवर होता है ।

२२५ ॐ ह्री अशुभकर्मरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शुद्धज्ञानस्वरूपोऽहम् ।

चरम शरीरी यदि न योगि है करता ध्यानाभ्यास प्रचुर ।
करता अशुभ कर्म निर्जरा अशुभास्रव निरोध सवर ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२२५॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२२६)

वही कहते हैं

आस्रवन्ति च पुण्यानि प्रचुराणि प्रतिक्षणम् ।
यैर्महद्धिर्भवत्येष त्रिदशः कल्पवासिषु ॥२२६॥

अर्थ- साथ ही उसके प्रतिक्षण पुण्य कर्म प्रचुर मात्रा में आस्रव को प्राप्त होते हैं जिनसे यह योगी कल्पवासी देवो मे महाऋद्धिधारक देव होता है ।

अन्तर्मन मे जब तृष्णा का ताडव नर्त्तन करता है ।
तब तब आत्म स्वभाव भूलकर प्राणी बंधन करता है ॥

२२६ ॐ ह्रीं पुण्यास्रवरूपकल्पवासिदेवरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ब्रह्मर्द्धिस्वरूपोऽहम् ।

प्रतिक्षण पुण्य कर्म आस्रव से पाता पुण्य स्वर्गदाता ।
महाऋद्धि धारी होता है कल्पादिक सुर पद पाता ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२२६॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२२७)

वही कहते है

तत्र सर्वेन्द्रियाल्हादि मनसः प्रीणनं परम् ।
सुखाऽमृतं पिबन्नास्ते सुचिरं सुर संवतिम् ॥२२७॥

अर्थ- उस देव पर्याय मे वह सर्व इन्द्रियो को आल्हादित और मन को परम तृप्त करने वाले सुखरूपी अमृत को पीता हुआ चिरकाल तक सुरो से सेवित रहता है ।

२२७ ॐ ह्री सर्वेन्द्रियाल्हादरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सुखामृतोऽहम् ।

पचेन्द्रिय आल्हाद प्रदायक सुखरूपी अमृत पीता ।
बहुत काल तक देव देवियो के द्वारा सेवित होता ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२२७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२२८)

वही कहते हैं

ततोऽवतीर्य मर्त्येऽपि चक्रवर्त्यादिसम्पदः ।
चिरं भुक्त्वा स्वयं मुक्त्वा दीक्षां दैगम्बरीं श्रितः ॥२२८॥

बाहर वातावरण सुधारोगे तो तुम को दुख होगा ।
मन का वातावरण सुधारो तो फिर तुमको सुख होगा ॥

अर्थ- वहाँ से मत्यलोक मे अवतार लेकर चक्रवर्ती आदि की सम्पदाओं को चिरकाल तक भोगकर फिर उन्हे स्वय छोडकर दिगम्बरी दीक्षा को आश्रय किये हुए ।

२२८ ॐ ह्री चक्रवर्त्यादिसम्पदारहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

ज्ञानचक्रीस्वरूपोऽहम् ।

फिर वह आर्य लोक में आता होता नृप चक्री सम्राट ।
बहुत काल भव भोग भोगता पाता लौकिक सौख्य विराट ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२२८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२२९)

वही कहते हैं

वज्रकाय: स हि ध्यात्वा शुक्ल ध्यानं चतुर्विधम् ।
विधूयाऽष्टाऽपि कर्माणि श्रयते मोक्षमक्षयम् ॥२२९॥

अर्थ- वह वज्रकाय योगी चार प्रकार के शुक्ल ध्यान को ध्याकर और आठों कर्मो का नाश करके अक्षय मोक्ष पद को प्राप्त करता है ।

२२९ ॐ ह्री अष्टकर्मरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अक्षयलक्ष्मीस्वरूपोऽहम् ।

फिर वह भव सुख त्याग दिगबर दीक्षा का लेता आश्रय ।
फिर वह वज्र काय योगी करता चौ शुक्ल ध्यान निर्भय ॥
आठो कर्मो को क्षय करता मोक्ष स्वपद पाता अक्षय ।
अजर अमर अविकल अविकारी अशरीरी पाता स्वनिलय॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२२९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

अतरंग निर्मल होगा तो राग द्वेष क्यों आएगा ।
अन्तर्मन में मैल भरा है तो सुख कैसे पाएगा ॥

(२३०)

मोक्ष का स्वरूप और असका फल

आत्यन्तिक-स्वहेतोर्यो विश्लेषो जीव-कर्मणोः ।
स मोक्षः फलमेतस्य ज्ञानाद्याः क्षायिकाः गुणाः ॥२३०॥

अर्थ- जीव और कर्म के प्रदेसश का स्वहेतु से बन्ध हेतुओ के अभाव तथाानिर्जरा रूप निजी कारण से जो आत्यन्तिक विश्लेष है एक दूसरे से सदा के लिये अतीव पृथक्त्व है वह मोक्ष अथवा मुक्ति जिसके फल है ज्ञानादिक क्षायिकगुण ज्ञानावरणादि कर्म प्रकृतियों के क्षय से प्रादुर्भूत होने वाले आत्मा के अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य, सुक्ष्मत्व अवगाहना, अगुरुलघुत्व और अव्याबाध नाम के स्वाभाविक मूल गुण ।

२३० ॐ ह्री जीवकर्मविश्लेषत्वविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अनतगुणचिच्चक्रेश्वरोऽहम् ।

जीव कर्म का आत्यान्तिक विश्लेषण करता है सुखरूप ।
बध हेतु का तब अभाव होता होता निर्जरा स्वरूप ॥
वही मोक्ष फल ज्ञानादिक क्षायिक स्वलब्धियो से सपन्न ।
स्वाभाविक स्वात्मोत्थ सुखो का ही समुद्र होता उत्पन्न ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२३०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२३१)

मुक्तात्मा का क्षणभर मे लोकाग्र गमन

कर्म-बन्धन विध्वसादूर्ध्वव्रज्या-स्वभावतः ।
क्षणेनैकेन मुक्तात्मा जगच्चूडाग्रमृच्छति ॥२३१॥

अर्थ- कर्मो के बन्धनो का विध्वस और ऊर्ध्वगमन का स्वभाव होने से मुक्त आत्मा एक क्षण मे लोक शिखर के अग्र भाव को प्राप्त होता है वहाँ पहुँच जाता है ।

शत प्रतिशत मे दस प्रतिशत भी समय लगाओ निज के हित।
तो निज पर कल्याण वृद्धि से सुख पाओगे तुम निश्चित॥

२३१ ॐ ह्री उर्ध्वगमनरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चैतन्यचूडामणिस्वरूपोऽहम् ।

कर्म बध विध्वस हो गए प्रगटा उर्ध्व गमन स्वस्वभाव ।
एक समय मे ही लोकाग शिखर का अग्र भाग हो पाप्त ॥
केवल अपने उपादान कारण स होता पूर्ण समथ ।
सिद्ध शिला पालेता होते बाह्य निमित्त सभी असमर्थ ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२३१॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२३२)

मुक्तात्मा के आकार का सहेतुक निर्देश

पुंसः संहार विस्तारौ संसारे कर्म निर्मितौ ।
मुक्तौ तु तस्य तौ न स्तः क्षयात्तद्धेतु-कर्मणाम् ॥२३२॥

अर्थ ससार के जीव के सकोच और विस्तार दोनो कर्म निर्मित होते है। मुक्ति प्राप्त होने पर उसके वे दोनो नहीं होते, क्योकि उनके हेतुभूत कर्मो का नाम कर्म की प्रकृतियो का क्षय हो जाता है ।

२३२ ॐ ह्री सकोचविस्ताररहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शाश्वतश्रीस्वरूपोऽहम् ।

जीवो का संकोच और विस्तार कर्म निर्मित होता ।
मुक्ति प्राप्त होने पर दोनो मे से नही कोई होता ॥
परमानद स्वरूप आत्मा शाश्वत पूर्ण सिद्ध होता ।
महामोक्ष मे तदाकार निर्भार निजात्म रूप होता ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२३२॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

प्रत्याख्यान प्रतिक्रमण प्रायश्चित आलोचन सुखदायी ।
मात्र मूढ अज्ञानी को ही ये पांचों है दुखदायी ॥

(२३३)

वही कहते है

ततः सोऽनन्तर-त्यक्त-स्वशरीर-प्रमाणतः ।
किंचिदूनस्तदाकारस्तत्रास्ते स्व-गुणात्मकः ॥२३३॥

अर्थ- अत मुक्ति मे वह पुरुष तत्पूर्व छोडे हुए अपने शरीर के प्रमाण से कुछ ऊन जितना तदाकार रूप मे अपने गुणो को आत्मसात् किये अपनाये हुए रहता है ।

२३३ ॐ ह्री स्वगुणात्मकात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजगुणानदस्वरूपोऽहम् ।

इनके हेतु भूत कर्म की नाम प्रकृति का क्षय होता ।
अतिम तन से किचित न्यूनाकार आत्मा ध्रुव होता ॥
मुक्तात्मा के आत्म प्रदेश व्यवस्थित रहते है घन रूप ।
गुण अनत भी उसी भाति रहते है निर्मल शुद्ध स्वरूप ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२३३॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२३४)

प्रक्षीणकर्मा की स्वरूप मे अवस्थिति और उसका स्पष्टीकरण

स्वरूपाऽवस्थितिः पुंसस्तदा प्रक्षीणकर्मणः ।
नाऽभावो नाऽप्यचैतन्यं न चैतन्यमनर्थकम् ॥२३४॥

अर्थ- तब सम्पूर्ण कर्म बन्धनो से छूट जाने पर उस प्रक्षीणकर्मा पुरुष की स्वरूप में अवस्थिति होती है जो कि न अभाव रूप है न अचैतन्यरूप है और न अनर्थक चैतन्यरूप है ।

२३४ ॐ ह्रीं अनर्थकचैतन्यरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शुद्धचिद्बोधस्वरूपोऽहम् ।

सुदृढ़ आत्म शक्ति के बल से सर्व कर्म अरि जय होते ।
पूर्व बद्ध कर्म निर्जरा हो जाती दुख क्षय होते ॥

जब सम्पूर्ण कर्म बंध से छुटकारा हो जाता है ।
तभी प्रकर्ष ध्यान का फल भी स्वतः प्रगट हो जाता है ॥
जो न अभाव रूप होता है होता नहीं अचेतन रूप ।
निज स्वरूप मे ही थित रहता नहीं अनर्थक चेतन रूप ॥
सहभावी चेतना स्वगुण का कभी अभाव नहीं होता ।
शुद्ध चेतना सदा ज्ञानरूपा लक्षण दर्शन होता ॥
नही अनर्थक होता है यह सदा सार्थक रहता है ।
सत् स्वरूप चैतन्य प्रभा निजगुण विशिष्ट युत रहता है ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२३४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२३५)

सब जीवो का स्वरूप

स्वरूपं सर्वजीवानां स्व-परस्य प्रकाशनम् ।
भानु-मण्डलवत्तेषां परस्मादप्रकाशनम् ॥२३५॥

अर्थ- सब जीवो का स्वरूप स्व का और पर का प्रकाशन है। सूर्य मण्डल की तरह पर से उनका प्रकाशन नहीं होता ।

२३५ ॐ ह्रीं परप्रकाशनरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानभानुस्वरूपोऽहम् ।

सब जीवों का स्वरूप जानो स्वपर प्रकाशक ज्ञान स्वभाव।
रवि मडल की भांति सदा ही सकल प्राणियों का स्वस्वभाव॥
जैसे रवि प्रकाश होता है नहीं दूसरे के द्वारा ।
त्यों ही आत्म स्वरूप प्रकाशन नहीं किसी के आधारा ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।

कर्म विजय होने पर ही होती है मुक्ति भवन की प्राप्ति ।
घाति अघाति क्षीण हो जाते होती है शिवसुख की व्याप्ति॥

बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२३५॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२३६)

स्वरूप स्थिति की दृष्टान्त द्वारा स्पष्टता

तिष्ठत्येव स्वरूपेण क्षीणे कर्माणि पुरुषः ।
यथा मणिः स्वहेतुभ्यः क्षीणे सांसर्गिके मले ॥२३६॥

अर्थ जिस प्रकार मणि रत्न ससर्ग को प्राप्त हुए मल के स्वकारणो से क्षय को प्राप्त हो जाने पर स्वरूप मे स्थित होता है उसी प्रकार जीवात्मा कर्ममल के स्वकारणो से क्षीण हो जाने पर स्वरूप मे स्थित होता है ।

२३६ ॐ ह्रीं सासर्गिकमलरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानमणिस्वरूपोऽहम् ।

ज्यो मणिरत्न सर्व मल विरहित होने पर होता निर्मल ।
त्यो आत्मा भी कर्म मल रहित होने पर होता उज्ज्वल ॥
ज्यो मणिरत्न विकार सहित होता न कभी भी किसी प्रकार।
त्यो आत्मा भी गुण चेतन्य सहित रहता है ध्रुव अविकार ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न जिन अनुरूप॥२३६॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२३७)

स्वात्मस्थिति के स्वरूप का स्पष्टीकरण

न मुह्यति न संशेते न स्वार्थानाध्यवस्यति ।
न रज्यति न चद्वेष्टि किन्तु स्वस्थः प्रतिक्षणम् ॥२३७॥

अर्थ मुक्ति को प्राप्त हुआ जीवात्मा न तो मोह करता है न सशय करता है न स्व तथा पर पदार्थो के प्रति अनध्यवसायरूप प्रवृत्त होता है स्व पर पदार्थो से अनभिज्ञ रहता है और न द्वेष करता है किन्तु प्रतिक्षण स्व मे स्थित रहता है ।

भव प्रकृतियों पर जय पाने पहिले सीख नियंत्रण विधि ।
धीरे धीरे निवृत्ति पाकर पालेगा तू निज की निधि ॥

२३७ ॐ ह्री संशयादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

नि:संशयस्वरूपोऽहम् ।

मुक्ति प्राप्त आत्मा मोहादिक सशय से रहता है भिन्न ।
द्वेषादिक से रहित स्वपरपदार्थ से रहता है अनभिज्ञ ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२३७॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२३८)

वही कहते है

त्रिकाल विषयं ज्ञेयमात्मान च यथास्थितम् ।
जानन्पश्यश्च नि:शेषमुदास्ते स तदा प्रभुः ॥२३८॥

अर्थ- उस समय वह सिद्धप्रभु त्रिकाल विषयक ज्ञेयको और आत्मा को यथावस्थित रूप मे जानता देखता हुआ उदासीनता उपेक्षा को धारण करता है और मुक्ति मे यह अच्युत सिद्ध उस अतीन्द्रिय अविनाशी सुख का अनुभव करता है ।

२३८ ॐ ह्री त्रिकालविषयज्ञेयविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञायकचिद्‌घनस्वरूपोऽहम् ।

त्रैकालिक ज्ञेयो का ज्ञाता उदासीनता धारी है ।
परम सिद्ध है सकल ज्ञेय को जान रहा अविकारी है ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२३८॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२३९)

वही कहते हैं

अनन्त-ज्ञान-दृग्वीर्य-वैतृष्ण्य-मयमव्ययम् ।
सुखं चाऽनुभवत्येष तत्राऽतीन्द्रियमच्युतः ॥२३९॥

सामायिक समभाव सभी जीवों पर मैत्री भाव महान ।
समभावों की आय इसी का सामायिक है नाम प्रधान ॥

अर्थ- जो अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन अनन्त वीर्य और अनन्त वैतष्ण्यरूप होता है ।

२३९ ॐ ह्रीं अव्ययात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

अच्युतस्वरूपोऽहम् ।

अविनाशी अविकल सुख का अनुभव करता है अच्युत सिद्ध।
दर्शन ज्ञान अनत वीर्य वैतृष्ण रूप है परम प्रसिद्ध ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२३९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२४०)

मोक्षसुख विषयक शका समाधान

ननु चाऽक्षैस्तदर्थानामनुभोक्तुः सुख भवेत् ।
अतीन्द्रियेषु मुक्तेषु मोक्षे तत्कीदृशं सुखम् ॥२०॥

अर्थ- यहा कोई शिष्य पूछता है कि सुख तो इन्द्रियो के द्वारा उनके विषयो को भोगनेवाले के होता है इन्द्रियो से रहित मुक्त जीवो के वह सुख कैसा?

२४० ॐ ह्री इन्द्रियविषयभोगरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अतीन्द्रियशिवस्वरूपोऽहम् ।

मुक्त जीव इन्द्रियातीत है इनको कैसे सुख होता ।
इन्द्रिय से ही सुख होता है कैसे सौख्य सिद्ध होता ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनु[illegible]॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२४१)

वही फिर कहते हैं

सम समता है यही समय है यही श्रेष्ठ आचरण प्रसिद्ध।
पाप पुण्य की झझट क्षय कर प्राणी हो जाता है सिद्ध ॥

इति चेन्मन्यसे मोहात्तन्न श्रेयो मतं यतः ।
नाऽद्यापि वत्स! त्वं वेत्सि स्वरूपं सुख दुःखयोः ॥२४१॥

अर्थ- इसके उत्तर में आचार्य कहते है हे वत्स! तू जो मोह से ऐसा मानता है वह तेरी मान्यता ठीक अथवा कल्याणकारी नही है क्योकि तूने अभी तक सुख दु ख के स्वरूप को ही नहीं समझा है इसी से सांसारिक सुख को जो वस्तुत दु ख रूप हैं सुख मान रहा है ।

२४१ ॐ ह्रीं सुखदु खरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अनुपमानंदस्वरूपोऽहम् ।

है मिथ्या मान्यता तुम्हारी मोहाधीन अज्ञ दुखरूप ।
मान रहा जिसको तू सुख है वह ससारी मयी दुखकूप ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२४१॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२४२)

मोक्ष सुख लक्षण

आत्माऽऽयत्तं निराबाधमतीन्द्रियमनश्वरम् ।
घातिकर्मक्षयोद्भूतं यत्तन्मोक्षसुखं विदुः ॥२४२॥

अर्थ- जो घातिया कर्मो के क्षय से प्रादुर्भूत हुआ है स्वात्माधीन हैं किसी दूसरे के आश्रित नहीं निराबाध है जिसमे कभी कोई प्रकार की बाधा उत्पन्न नही होता अतीन्द्रिय है इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं और अनश्वर है कभी नाश को प्राप्त नहीं होता उसको मोक्षसुख कहते हैं ।

२४२ ॐ ह्रीं आत्मायत्तरूपात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निराबाधब्रह्मस्वरूपोऽहम् ।

घाति कर्म क्षय से जो प्रादूर्भूत हुआ सुख स्वात्माधीन ।
निरावाध है सच्चा सुख है नहीं किसी के है आधीन ॥

**आर्त्तरौद्र ध्यानों को तजकर धर्म ध्यान का चिन्तन कर।
धीरे धीरे विकास करके शुक्ल ध्यान से बंधन हर ॥**

यही अतीन्द्रिय अविनश्वर है नहीं नाश को होता प्राप्त ।
इसी मोक्ष सुख का उपभोग किया करते हे जिनपति आप्त॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२४२॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२४३)

सासारिक सुख का लक्षण

**यत्तु सांसारिक सौख्यं रागात्मकमशाश्वतम् ।
स्व-पर-द्रव्य-सभूत-तृष्णा-सन्ताप-कारणम् ॥२४३॥**

अर्थ और जो रागात्मक सासारिक सुख है वह अशाश्वत है स्थिर रहने वाला नही स्वद्रव्य और परद्रव्य से उत्पन्न हुआ है इसलिये स्वाधीन नही तृष्णा तथा सन्ताप का कारण है।

२४३ ॐ ह्री रागात्मकक्षणिकसौख्यरहितात्ममतत्त्वस्वरूपाय नम ।

शीतलबोधस्वरूपोऽहम् ।

जो रागात्मक सासारिक सुख वह अशाश्वत सदा अथिर ।
पर द्रव्यो के सयोगो से जो सुख हो वह कभी न थिर ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
विना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान कभी अनुरूप॥२४३॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२४४)

**मोह-द्रोह-मद-क्रोध-माया-लोभ-निबन्धनम् ।
दु:ख-कारण-बन्धस्य हेतुत्वाद्दु:खमेव तत् ॥२४४॥**

अर्थ मोह द्रोह और क्रोध मान माया लोभ का साधन है और दु ख के कारण बन्ध का हेतु है इसलिये दु खरूप ही है ।

२४४ ॐ ह्री मोहद्रोहादिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्मदस्वरूपोऽहम् ।

**पांचो इन्द्रिय करो नियंत्रित अन्तर्मन को शुद्ध करो ।
ध्यान अध्ययन जप तप द्वारा सारे भाव अशुद्ध हरो ॥**

मोह द्रोह युत तृष्णा अरु संताप युक्त सुख पर आधीन ।
क्रोधमान माया व लोभ का साधन बंध हेतु सुख हीन ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२४४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२४५)

इन्द्रिय विषयो से सुख मानना मोह का माहात्म्य

**तन्मोहस्यैव माहात्म्यं विषयेभ्योऽपि यत्सुखम् ।
यत्पटोलमपि स्वादु श्लेष्मणस्तद्विजृम्भितम् ॥२४५॥**

अर्थ इन्द्रिय विषयो से भी जो सुख माना जाता है वह मोह का ही माहात्म्य है जो विषयो से सुख मानता है समझना चाहिये वह मोह से अभिभूत है जैसे पटोल (कटु वस्तु) भी जिसे मधुर मालूम होती है वह उसके श्लेष्मा का माहात्म्य है समझना चाहिये उसके शरीर मे कफ बढा हुआ है ।

२४५ ॐ ह्रीं श्लेष्मरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्व्याधिस्वरूपोऽहम् ।

इन्द्रिय विषयो से जो सुख माना जाता वह मोह प्रसूत ।
मोह श्लेश्मा का प्रभाव है जीव मोह से है अभिभूत ॥
सर्प दश जो प्राणी होते रुचि से नीम चबाते है ।
कर्म दश जो जीव उन्हे जिन वच न कभी भी भाते हैं ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२४५॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२४६)

मुक्तात्माओ के सुख की तुलना मे चक्रियो देवों का सुख नगण्य

जग के सारे प्राणी सुख की चाह हृदय में रखते हैं ।
किन्तु न करते सुख के कार्य तभी तो भव दुख चखते है॥

यदत्र चक्रिणां सौख्यं स्वर्गे दिवौकसाम् ।
कलयाऽपि न तत्तुल्यं सुखस्य परमात्मनाम् ॥२४६॥

अर्थ- जो सुख यहाँ इस लोक में चक्रवर्तियो को प्राप्त है और जो सुख स्वर्ग में देवों को प्राप्त है वह परमात्माओं के सुख की एक कला के बहुत ही छोटे अश के भी बराबर नही है ।

२४६ ॐ ह्री परमात्मसौख्यात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजसौख्यकलास्वरूपोऽहम् ।

देवो का सुख चक्रवर्ति का सुख तो है कर्मो की धूल ।
मुक्तात्मा के सुख का एक अश भी ना इनके अनुकूल ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२४६॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(२४७)

पुरुषार्थो मे उत्तम मोक्ष और उसका अधिकारी स्याद्वादी

अतएवोत्तमो मोक्षः पुरुषार्थेषु पठ्यते ।
स च स्याद्वादिनामेव नान्येषामात्म विद्विषाम् ॥२४७॥

अर्थ- इसी लिये सब पुरुषार्थो मे मोक्ष उत्तम पुरुषार्थ माना जाता है। और वह मोक्ष स्याद्वादियो के अनेकान्तमतानुयायियो के ही बनता है, दूसरे एकान्तवादियों के नहीं जो कि अपने शत्रु आप है ।

२४७. ॐ ह्री शिवसौख्यात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चित्कलास्वरूपोऽहम् ।

सब पुरुषार्थो मे उत्तम पुरुषार्थ मोक्ष का ही होता ।
मोक्ष स्याद्वादी को होता ना एकान्ती को होता ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२४७॥

द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव की शुद्धि परम आवश्यक है।
सामायिक में विशुद्ध होता तब सच्ची सामायिक है ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(२४८)

एकान्तवादियो के बन्धादि चतुष्टय नहीं बनता

यद्वा बन्धश्च मोक्षश्च तद्धेतू च चतुष्टयम् ।
नास्त्येवैकान्त-रक्तानां तद्व्यापकमनिच्छताम् ॥२४८॥

अर्थ अथवा बन्ध और मोक्ष बन्ध हेतु और मोक्ष हेतु यह चतुष्टय चारो का समुदाय उन एकान्त आसक्तों के सर्वथा एकान्तवादियों के नहीं बनता जो कि चारों में व्याप्त होने वाले तत्त्व को स्वीकार नही करते ।

२४८ ॐ ह्रीं बन्धमोक्षहेत्वादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सदासौख्यकलास्वरूपोऽहम् ।

बध मोक्षअरु बध हेतु अरु मोक्ष हेतु चारों समुदाय ।
चारो मे जो तत्त्व व्याप्त है वह है अनेकान्त सुखदाय ॥
जो एकान्त वादियो को होता है कभी नही स्वीकार ।
अनेकान्त से वे सुदूर है आत्म तत्त्व का कर परिहार ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२४८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२४९)

बन्धादि चतुष्टय के न बनने का सहेतुक स्पष्टीकरण

अनेकान्तात्मकत्वेन व्याप्तावत्रक्रमाऽक्रमौ ।
ताभ्यामर्थक्रिया व्याप्ता तयाऽस्तित्वं चतुष्टये ॥२४९॥

अर्थ- इस चतुष्टय मे अनेकान्तात्मकत्व के साथ क्रमम और अक्रम व्याप्त है क्रम और अक्रम के साथ अर्थ क्रिया व्याप्त हैं और अर्थ क्रिया के साथचतुष्टय का अस्तित्व व्याप्त है ।

परम ज्ञान रस सिंचित करके आत्म वृक्ष पल्लवित करो।
फल में महामोक्ष फल पाओ भव पर्वत सपूर्ण हरो ॥

२४९ ॐ ह्रीं अर्थक्रियादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम. ।

वस्तुत्वगुणसहितोऽहम् ।

इसी चतुष्टय मे क्रम अक्रम अनेकान्तात्मकत्व व्याप्त ।
क्रम अक्रम के साथ सदा ही अर्थ क्रिया भी पूरी व्याप्त ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२४९॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२५०)

वही कहते हे

मूल व्याप्तुनिवृत्तौ तु क्रमाऽक्रम-निवृत्तित· ।
क्रिया कारकयोर्भ्रशान्न स्यादेतच्चतुष्टयम् ॥२५०॥

अर्थ- मूल प्याता अनेकान्त की निवृत्ति होने पर क्रम अकर्म नही बनते क्रम अक्रम के न बनने से अर्थ क्रिया नही बनती और अर्थ क्रिया के न बनने से यह चतुष्टय नही बनता।

२५० ॐ ह्री क्रियाकारकादिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

अकर्त्तास्वरूपोऽहम् ।

मूल व्याप्ता अनेकान्त की निवृत्ति हो तो क्रम अक्रम ।
होते नही न होती अर्थ क्रिया न चतुष्टय है सक्षम ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२५०॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२५१)

वही कहते है

ततो व्याप्ता समस्तस्य प्रसिद्धश्च प्रमाणत: ।
चतुष्टय-सदिच्छद्भिरनेकान्तोऽनुगम्यताम् ॥२५१॥

आत्म शुद्धि जिन परिणामों से हो तो उनको हृदय जगा।
जिन परिणामों से अशुद्धि हो उनको तत्क्षण पूर्ण भगा ॥

अर्थ अत उक्त चतुष्टय के अस्तित्व की इच्छा की इच्छा रखने वाला को सारे चतुष्टय का जो व्याप्ता और प्रमाण से प्रसिद्ध अनेकान्त हैं उसका सविवेक ग्रहण पूर्वक अनुसरण करना चाहिये।

२५१. ॐ ह्रीं अनेकान्तस्वरूपविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निजधर्मसमृद्धोऽहम् ।

उक्त चतुष्टय को जो व्याप्ता अनेकान्त है प्रमाण सिद्ध ।
उसको ही सविवेक ग्रहण कर करो अनुसरण उसका सिद्ध॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२५१॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि ।

(२५२)

ग्रन्थ मे ध्यान के विस्तृत वर्णन का हेतु

सारश्चतुष्टयेऽप्यस्मिन्मोक्ष: स ध्यानपूर्वक: ।
इति मत्वा मया किंचिद्ध्यानमेव प्रपंचितम् ॥२५२॥

अर्थ इस चतुष्टय मे भी जो सारपदार्थ है वह मोक्ष है और वह ध्यान पूर्वक प्राप्त होता है ध्यानाराधना के बिना मोक्ष की प्राप्ति नही होती यह मानकर मेरे द्वारा ध्यान विषय ही थोडा प्रपचित हुआ अथवा कुछ स्पष्ट किया गया है ।

२५२ ॐ ह्रीं साररूपमोक्षपर्यायविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

आत्मधर्मसंपन्नोऽहम् ।

इसी चतुष्टय मे जो सार पदार्थ वही है मोक्ष महान ।
प्राप्त ध्यान पूर्वक होता है अत. ध्यान समझो मतिमान ॥
ध्यानाराधन बिना मोक्ष की प्राप्ति असभव है जानो ।
ध्यान स्वरूप जानकर सम्यक् ध्यान आत्मा का मानो ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२५२॥

व्रत उपवास दया जप संयम भाव शुद्धि के कारण है ।
अनियंत्रित जीवन असंयमी अविरत अशुद्धि के कारण है॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२५३)

ध्यान विषय की गुरुता और अपनी लघुता

यद्यप्यत्यन्त-गम्भीर मभूमिर्मादृशामिदम् ।
प्रावर्तिषि तथाप्यत्र ध्यान-भक्ति-प्रचोदित: ॥२५३॥

अर्थ- यद्यपि यह ध्यान विषय अत्यन्त गम्भीर है और मेरे जैसों की यथेष्ठ पहुँच से बाहर की वस्तु है तो भी ध्यान भक्ति से प्रेरित हुआ मैं इसमें प्रवृत हुआ हूँ ।

२५३ ॐ ह्री ध्यानभक्तिविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ब्रह्मसुधास्वरूपोऽहम् ।

ध्यान विषय अत्यत परम गम्भीर किन्तु मै हूँ अल्पज्ञ ।
तो भी ध्यान भक्ति से प्रेरित होकर हुआ प्रवृत्त समग्र ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२५३॥

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२५४)

रचना मे स्खलन के लिये श्रुतदेवता से क्षमा याचना

यदत्र स्खलितं किंचिच्छाद्मस्थ्यादर्थ-शब्दयो: ।
तन्मे भक्तिप्रधानस्य क्षमतां श्रुतदेवता ॥२५४॥

अर्थ- इस रचना में छद्मस्थता के कारण अर्थ तथा शब्दों के प्रयोग मे जो कुछ स्खलन हुआ हो या त्रुटि रही हो उसके लिये श्रुतदेवता मुझे भक्ति प्रधान को क्षमा करें ।

२५४. ॐ ह्रीं छद्मस्थविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्दोषस्वरूपोऽहम् ।

इसमें जो भी भूल हुई हों या त्रुटियाँ हों क्षमा करें ।
पाप भक्षिणी विद्या श्री जिनवाणी का ही मनन करे ॥

आत्म क्षेत्र में ज्ञान ध्यान वैराग्य भावना ही भाओ ।
कर्म क्षेत्र के पिछले अपराधों पर इस विधि जय पाओ॥

श्री अर्हन मुख कमल वासिनी पाप क्षयंकर सरस्वती ।
श्रुत देवता महान अधिष्ठाता श्रुत मां कल्याणवती ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२५४॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२५५)

भव्य जीवों को आशीर्वाद

वस्तु-याथात्म्य-विज्ञान-श्रद्धान-ध्यान-सम्पदः ।
भवन्तु भव्य-सत्त्वानां स्वस्वरूपोपलब्धये ॥२५५॥

अर्थ वस्तुओ के याथात्म्य तत्त्व का विज्ञान श्रद्धान और ध्यानरूप सम्पदाएँ भव्य जीवों की अपनी स्वस्वरूपोपलब्धि के लिए कारणीभूत होवे ।

२५५ ॐ ह्री विज्ञानसम्पदारूपात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

निर्लेपस्वरूपोऽहम् ।

वस्तु तत्त्व विज्ञान वस्तु श्रद्धान ध्यान सपदा महान ।
स्वस्वरूप उपलब्धि हेतु भव्यो को है कारण बलवान ॥
श्रद्धा ज्ञान यथार्थ ध्यान तीनों सपत्ति प्राप्त होवे ।
मोक्ष प्राप्ति मे यही सहायक भव्य सदैव सुखी होवें ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२५५॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२५६)

ग्रन्थ कार प्रशस्ति

श्रीवीरचन्द्र शुभदेव महेन्द्रदेवाः
शास्त्राय यस्य गुरवो विजयामरश्च ।

निज का व्यापक गहन अध्ययन बल पूर्वक करना होगा।
अतुल शक्ति प्रद आत्म ध्यान से भव बाधा हरना होगा॥

दीक्षागुरुः पुनरजायत पुण्यमूर्तिः
श्री नागसेन मुनिरुद्ध चरित्रकीर्तिः ॥२५६॥

अर्थ- जिसके श्रीमान् वीरचन्द्र शुभदेव महेन्द्रदव और विजयदेवशास्त्र गुरु (विधागुरु) हैं पुण्यमूर्ति ऊँचे दर्जे के चरित्र तथा कीति को प्राप्त श्रीमान् नागसेन जिसके दीक्षागुरु हे।

२५६ ॐ ह्री गुरुशिष्यविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

आत्मनिर्भरोऽहम् ।

विद्या गुरु श्री वीरचद्र शुभदेव महेन्द्र देव जय हो ।
विजय देव ये सब विद्या गुरु इन सबकी ही जय जय हो ॥
दीक्षा गुरु श्री नागसेन मुनि पुण्य पूर्ति चारित्र प्रधान ।
कीर्ति प्राप्त ये मेरे गुरु है इनसे पाया सम्यक् ज्ञान ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२५६

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२५७)

ग्रन्थकार प्रशस्ति

तेन प्रबुद्ध-धिषणेन गुरूपदेश
मासाद्य सिद्धि-सुख-सम्पदुपायभूतम् ।
तत्त्वानुशासनमिद जगतो हिताय
श्रीरामसेन-विदुषा व्यरचि स्फुटार्थम् ॥२५७॥

अर्थ- उस प्रबुद्ध बुद्धि श्रीरामसेन विद्वानने गुरुवो के उपदेश को पाकर इस सिद्धि सुख सम्पत के उपायभूत तत्त्वानुशासन शास्त्र की जो कि स्पष्ट अर्थ से युक्त है जगत के हित के लिये रचना की है ।

२५७ ॐ ह्रीं प्रबुद्धधीविकल्परहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

सहजज्ञानानन्दरूपोऽहम् ।

कर्म के दास जो बनते है कर्म करते हैं ।
धर्म के दास जो बनते हैं धर्म करते हैं ॥

मैं मुनि रामसेन इनका ही शिष्य इन्हीं से पा उपदेश ।
बुद्धि प्रबुद्ध लिखा यह शास्त्र महान युक्त जिनवर संदेश ॥
श्रेष्ठ शास्त्र तत्त्वानुशासन सुख सपदा सिद्धि दाता ।
जगत हिताय लिखा है मैने आत्म हिताय सुखदाता ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२५

ॐ ह्री श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्य नि. ।

(२५८)

अन्त्य मगल

जिनेन्द्राः सदध्यान-ज्वलन-हुत-घाति-प्रकृत्यः
प्रसिद्धाः सिद्धाश्च प्रहत-तमसः सिद्धि-निलयाः ।
सदाऽऽचार्या वर्याः सकल-सदुपाध्याय-मनुयः
पुनन्तु स्वान्तं नस्त्रिजगदधिकाः पंचगुरवः ॥२५८॥

अर्थ- वे अर्हज्जिनेन्द्र जिन्होने प्रशस्त ध्यानाग्नि के द्वारा घातिया कर्मो की प्रकृतियो को भस्म किया है वे प्रसिद्ध सिद्ध जिन्होने विभाव रूपअन्धकार का पूर्णत. विनाश किया है तथा जो स्वात्मोपलब्धि रूपसिद्धि के निवास स्थान है वे श्रेष्ठ आचार्य और वे सह प्रशसनीय उपाध्याय तथा मुनि साधु जो तीन लोक के सर्वोपरि गुरु पचपरमेष्ठी हैं वे हमारे अन्त करण को सदा पवित्र करें उनके चिन्तन एवं ध्यान से हमारा हृदय पवित्र हो ।

२५८ ॐ ह्री अज्ञानतमरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

ज्ञानप्रकाशनिर्भरोऽहम् ।

श्री जिनेन्द्र अरहंत देव ने ध्यान अग्नि का किया प्रयोग ।
घाति कर्म की सर्व प्रकृतियां करके भस्म लिया अवयोग ॥
वे प्रसिद्ध हो गए सिद्ध संसार तिमिर का किया विनाश ।
हैं लोकाग्र शिखर के ऊपर सिद्ध लोक में सदा निवास ॥

धर्म अरु कर्म में अंतर महान है जानो ।
धर्म ही एक मात्र सौख्य प्रदाता मानो ॥

श्री आचार्य स्वगुण छत्तीस विराजित वे कल्याण करे ।
द्वादशांग के पाठी उपाध्याय श्री ज्ञान प्रदान करें ॥
अट्ठाईस मूल गुण धारी श्री साधु मुनिवर स्वस्वरूप ।
ये पाचो परमेष्ठी सबको सुखी करे निश्चय शिवरूप ॥
अन्तकरण पवित्र हमारा करें यही है भावना महान ।
इनके चिन्तन तथा ध्यान से सतत हमारा हो कल्याण ॥
यही अन्त्यमगल सर्वोत्तम सर्व जगत को सुखी करे ।
धर्म मार्ग मे जो भी आए विघ्न सभी के त्वरित हरे ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२५८॥

ॐ ह्रीं श्री तत्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

(२५९)

अन्त्य मगल

देहज्योतिषि यस्य मज्जति जगददुग्धामम्बुराशाविव
ज्ञान-ज्योतिषि च स्फुटतत्यतितरामो भूर्भवः स्वस्त्रीय ।
शब्द-ज्योतिषि यस्य दर्पण इव स्वार्थाश्चकासन्त्यमी
स श्रीमानमराचितो जिनपतिर्ज्योति स्त्रयायाऽस्तुनः ॥२५९॥

अर्थ- जिसकी देह ज्योति मे जग ऐसे डूबा रहता है जेसे कोई क्षीरसागर मे स्नान कर रहा हो, जिसकी ज्ञान ज्योति मे भू (अधोलोक) भुव (मध्यलोक) और स्व (स्वर्गलोक) यह त्रिलोकीरूप ज्ञेय अत्यन्त स्फुटित होता है और जिसकी शब्द ज्योति (वाणी के प्रकाश) मे ये स्वात्मा और परपदार्थ दर्पण की तरह प्रतिभासित होते हैं वह देवों से पूजित श्रीमान् जिनेन्द्र भगवान तीनो ज्योतियो की प्राप्ति के लिये हमारे सहायक होंवे ।

२५९ ॐ ह्रीं देहज्योतिरहितात्मतत्त्वस्वरूपाय नम ।

चिज्ज्जयोतिस्वरूपोऽहम् ।

कर्म का दास तो संसार मे ही रहता है ।
चारों गतियों के भँवर मध्य सतत बहता है ॥

जिनकी देह ज्योति में यह जग ऐसे डूबा रहता है ।
मानों कोई क्षीरोदधि में नव्हन कर रहा होता है ॥
जिनकी ज्ञान ज्योति भू है जो है अधो लोक विख्यात् ।
तथा भुव है जो कहलाता मध्य लोक उत्तम विख्यात् ॥
स्वर्ग लोक यह स्व कहलाता यही त्रिलोक ज्ञेय जिनको ।
शब्द ज्योति मे दर्पण रूप प्रतिभासित स्व अरु पर जिनको॥
सकल जगत के देवो से पूजित जिनेन्द्र भगवान महान ।
बने सहायक तीन ज्योति पाने को हमको शिवपुरयान ॥
शब्द ब्रह्ममय परब्रह्ममय ज्ञान ब्रह्ममय हे ब्रह्मेश ।
लोकालोक जानने वाले आत्मज्ञ हे प्रभु सिद्धेश ॥
विमल तत्त्व अनुशासन अथवा आत्मानुशासन सुख रूप ।
बिना तत्त्व अनुशासन होता कोई ध्यान न निज अनुरूप॥२५९॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय अर्घ्यं नि ।

अंतिम महाअर्घ्य

ताटक

पर मे है किंचित् भी यदि सुख बुद्धि तुम्हारी तो दुख है ।
यही अनादर है निजात्म का पर मे रच नही सुख है ॥
पर मे यदि उपादेयता है तो यह हिसा है आत्मा की ।
निज स्वभाव की है उपेक्षा विस्मृति है शुद्धात्मा की ॥
अतर मे जाना है तो फिर ज्ञान भाव से हो श्रृंगार ।
यह श्रृंगार तुझे ले जाएगा झट से भव सागर पार ॥
अन्तर्दृष्टि जाग्रत हो तो आत्म ज्योति प्रस्फुटित सदा ।
शुद्ध अबंध स्वभावी ज्ञायक की महिमा मत भूल कदा ॥

कभी पाता है ननरक कभी स्वर्ग पाता है ।
कभी तिर्यंच हो के महा कष्ट पाता है ॥

तीर्थ स्वरूप आत्मा निज में जो आरूढ त्वरित होते ।
वे ही मोक्षमार्ग पर चलकर सिद्ध स्वगुण भूषित होते ॥
तीर्थ यात्रा का यदि लक्ष्य हृदय मे है तो है शुभ रागा ।
आत्म तीर्थ यात्रा करते ही हो जाता है पूर्ण विराग ॥
उदय निर्जरा बंध मोक्ष को जान रहा मेरा आत्मा ।
उससे जुडता नहीं तनिक भी अत अकर्त्ता है आत्मा ॥
निश्चय नय का बल हो तो व्यवहार हेय हो जाता है ।
यदि व्यवहार सबल हो तो निश्चय न श्रेय हो पाता है ॥
जब स्वद्रव्य का निर्णय हो पर्याय दृष्टि हट जाती है ।
वर्त्तमान पर्याय स्वय ही द्रव्योन्मुख हो जाती है ॥
निर्मलतावबृद्धिगत होती शान्ति आत्मा पाती है ।
सम्यक् दर्शन की महिमा से निर्मल धारा आती है ॥
ज्ञातादृष्टा बने रहे तो पाया जिन आगम का सार ।
ज्ञातादृष्टा पना तजा तो होगा भव दुख अपरपार ॥
वीतराग ज्ञाता स्वभाव से अल्प काल मे होती मुक्ति ।
एकमात्र यह वीतरागता मुक्ति प्राप्ति की उत्तम युक्ति ॥

दिग्वधू

रागादि भाव दुखमय ज्ञानादि भाव सुखमय ।
अपना स्वभाव आश्रय ही एक मात्र शिवमय ॥
अनुभूति आत्मा की जिन धर्म श्रेष्ठ जानो ।
अनुभूति अगर पर की तो कर्म नेष्ठ मानो ॥
स्वात्मानुभूति हो तो शिवमार्ग सरल होता ।
स्वात्मानुभूति के बिन भव मयी गरल होता ॥

धर्म का दास धर्म मार्ग पर आ जाता है ।
धर्म साम्राज्य का स्वामी वही हो जाता है ॥

चैतन्य चक्रवर्त्ती त्रिभुवन से वंदित है ।
शुद्धात्म तत्त्व निर्मल सबसे अभिनंदित है ॥
पर की अनुभूति तजो निज की अनुभूति करो ।
आत्मानुभूति द्वारा निज सिद्ध विभूति वरो ॥
त्रिभुवन का वैभव भी तो क्षणिक विनश्वर है ।
अपना निजात्म वैभव ही तो अविनश्वर है ॥

दोहा

महाअर्घ्य अर्पण करू करू तत्त्व का ज्ञान ।
निज अनुशासन में रहू करू आत्म कल्याण ॥

ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन समन्वित श्री जिनागमाय महाअर्घ्य नि ।

महाजयमाला

रोला

देव धर्म गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण करके ।
स्वानुभूति का ही सकल्प हृदय मे धर के ॥
सासारिक आकर्षण के पति अनासक्ति हो ।
उर विवेक हो रत्नत्रय की पूर्ण भक्ति हो ॥
आत्म धर्म आत्मानुभूति से ही होता है ।
सकल कर्म कालिमा यही पूरी धोता है ॥
रोम रोम से अमृत रस की धारा बहती ।
शान्ति सुधा समता रस धारा सहज बरसती ॥
सर्व प्रथम तत्त्वों का निर्णय आवश्यक है ।
निश्चय भूत पदार्थ आश्रय परमावश्यक है ॥
निज स्वभाव साधन ही तो परमोत्कृष्ट है ।
केवल निज शुद्धात्मा ही सर्वोकृष्ट है ॥

धर्म ही एक मात्र विश्व में है हितकारी ।
यही है मुक्ति प्रदाता महान सुखकारी ॥

दर्शन पूजन अर्जन वदन योग्य आत्मा ।
जो पुरुषार्थ शक्ति से हो जाता परमात्मा ॥

चौपई

पच महाव्रत शुभ परिणाम, नहीं आत्मा का है काम ।
पचम महाव्रत शिव सुख मूल, यही मान्यता है दुख मलू ॥
यह तो कर्म बध का हेतु, यह तो स्वर्गादिक का सेतु ।
फिर नीचे गिरता तत्काल, भव दुख पाता ममहा विशाल ॥
शुद्ध भाव जब होते संग,, बाह्य महाव्रत होते अग ।
अतरंग परिणाम महान, करते कर्मो का अवसान ॥
पच महाव्रत क्रिया सुरीत, आत्म क्रिया से यह विपरीत ।
इससे है कर्मो का बंध यथाख्यात् से ना सबध ॥
केवल ह यह शुभ उपयाग, इसमे कही न शुद्धोपयोग ।
यह दृढ निश्चय करो यथार्थ, आश्रय लो निश्चय भूतार्थ॥
स्वानुभूति बिन व्रत सब व्यर्थ, इनसे सिद्ध न होता अर्थ ।
ये सविकल्प सराग स्वरूप, मात्र आत्मा शुद्ध स्वरूप ॥

वीरछद

तीर्थयात्रा करने से कुछ लाभ न होता यह लो जान ।
निज कल्याण यात्रा कर लो सच्चा सुख होगा अमलान ॥
वीतराग प्रवचन को सुनकर भी है परम तत्त्व से दूर ।
अमृत सरोवर को तज करके भव विष पीता है भरपूर ॥
रुचि पूर्वक जो निज स्वभाव का करते नित्य सतत अभ्यास।
उनका मिथ्या भ्रम क्षय होता वे ही पाते मोक्ष निवास ॥
पहिले तू अनुमान ज्ञान से नव तत्त्वो को ले पहचान ।
फिर तू अनुभव ज्ञान शक्ति से आत्म तत्त्व निज को ले जान॥

लक्ष्य यदि पूर्णता का है तो मुक्ति निश्चित है ।
लक्ष्य का ही तपता है तो दुख अपरिमित है ॥

आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान ही है उत्तम कल्याणमयी ।
जो इसके विपरीत ज्ञान है वह तो ससारमयी ॥
राग पृथक है ज्ञान पृथक है पहिले इसका निश्चय कर ।
फिर तू भेद ज्ञान के द्वारा सप्त तत्त्व का निर्णय कर ॥
मै चेतन हूँ ऐसा निश्चय करना ही है मानव धर्म ।
मानव धर्म आत्मा से ही परिचय करना उत्तम धर्म ॥
मद कषाय भाव से अन्तर्मुख होता न कभी कोई ।
मद कषाय भाव से बिलकुल धर्म नही होता कोई ॥
जब तक पर का लक्ष्य रहेगा आत्मा होगा कभी न प्राप्त ।
आत्मा ही यदि प्राप्त न होगा तो फिर कैसे होगा आप्त ॥
शास्त्र पठन पाठन से सम्यक् दर्शन होना दुर्लभ है ।
यह क्षयोपशम ज्ञान पराश्रित निज दर्शन भी दुर्लभ है ॥
सम्यक् दर्शन के प्रत्यय से जन्म मरण टल जाता है ।
मिथ्यादर्शन के कारण सब शास्त्र ज्ञान गल जाता है ॥
अत अगर शिव सुख पाना है तो सम्यक दर्शन लो खोज।
फिर सयम मय अनुशासन से उर मे भर लेना ध्रुव ओज॥
दो सौ उनसठ अर्घ्य चढाए शास्त्र तत्त्व अनुशासन के ।
महा विनय से गीत गुजाए जिन दिव्य ध्वनि पर जिनके ॥

ॐ ह्री श्री रामसेनाचार्य कृत तत्त्वानुशासन ग्रन्थे आत्म तत्त्व स्वरूपाय जयमाला पूर्णर्घ्यं नि ।

आशीर्वाद

दोहा

तत्त्वज्ञान की शक्ति से पाऊ सम्यक् ज्ञान ।
महामोक्ष को प्राप्त कर बन जाऊगा भगवान ॥

ध्रुव त्रिकाली लक्ष्य एक मात्र शिव कर है ।
लक्ष्य पर्याय को हो तो महान दुख कर है ॥

अनुशासन की डोर से बधूँ बनूँ मुनिराज ।
निज स्वरूप में डूबकर पाऊ निज पद राज ॥

इत्याशीर्वाद :

शान्ति पाठ

रोला

हे जिनेन्द्र जयवत आप की जय हो जय हो ।
सकल जगत को यह जिन शासन मगलमय हो ॥
कोई प्राणी इस धरती पर नही दुखी हो ।
आत्म साधना द्वारा प्राणी सदा सुखी हो ॥
अखिल विश्व मे परम शान्ति का साम्राज्य हो ।
कही अशान्ति नहीं हो स्वामी ध्रुव स्वराज्य हो ॥
वृषभादिक चौबीस जिनेश्वर को निज ध्याऊ ।
परम शान्ति हो पूर्ण शान्ति हो यह निज भाऊ ॥

पुष्पांजलि

नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करें ।

जाप्य मंत्र ॐ ह्रीं श्री तत्त्वानुशासन जिनागमाय नमः ।

क्षमापना

रोला

शास्त्र तत्त्व अनुशासन की प्रभु महिमा गाई ।
विनय भाव से पूजन की मैने सुखदाई ॥
इस विधान मे जो भी भूल हुई हों स्वामी ।
वे सब क्षमा करो हे जिनवर अन्तर्यामी ॥
सकल विषमताओं का बादल पल में भागे ।
आत्म तत्त्व अनुशासन मेरे उर मे जागे ॥

पुष्पांजलि